सूरज चमके आधी रात

पढ़ें और सीखें योजना

सूरज चमके आधी रात

हिमांशु जोशी

विभागीय सहयोग

सुरेश चन्द्र पाण्डेय

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

अगस्त 1989
भाद्र 1911
P.D. 10T — AKS

© राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 1989

सर्वाधिकार सुरक्षित

☐ प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इस प्रकाशन के किसी भाग को छापना तथा इलेक्ट्रॉनिकी, मशीनी, फोटोप्रतिलिपि, रिकार्डिंग अथवा किसी अन्य विधि से पुनः प्रयोग पद्धति द्वारा उसका संग्रहण अथवा प्रसारण वर्जित है।

☐ इस पुस्तक की बिक्री इस शर्त के साथ की गई है कि प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना यह पुस्तक अपने मूल आवरण अथवा जिल्द के अलावा किसी अन्य प्रकार से व्यापार द्वारा उधारी पर, पुनर्विक्रय, या किराए पर न दी जाएगी, न बेची जाएगी।

☐ इस प्रकाशन का सही मूल्य इस पृष्ठ पर मुद्रित है। रबड़ की मुहर अथवा चिपकाई गई पर्ची (स्टिकर) या किसी अन्य विधि द्वारा अंकित कोई भी संशोधित मूल्य गलत है तथा मान्य नहीं होगा।

प्रकाशन सहयोग

सी.एन. राव : **अध्यक्ष, प्रकाशन विभाग**

प्रभाकर द्विवेदी : **मुख्य सम्पादक**
आशीष सिन्हा : **सम्पादक**

यू. प्रभाकर राव : **मुख्य उत्पादन अधिकारी**
डी. साई प्रसाद : **उत्पादन अधिकारी**
चंद्र प्रकाश टंडन : **कला अधिकारी**
प्रमोद रावत : **उत्पादन सहायक**

पारदर्शी तथा अन्य चित्र
लेखक
नार्वेजियन दूतावास
मीना मंहारी

अलंकरण
चंद्र प्रकाश टंडन

मूल्य : रु० 14.50

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली 110016 द्वारा प्रकाशित तथा ए.बी.सी. डेटा ज़ोन, जनपथ लेन, नई दिल्ली 110 001 द्वारा फोटो कम्पोज़ और कुनाल कलर स्कैन, A 44 नारायणा इन्डस्ट्रियल एरिया फेज़ II नई दिल्ली 110 028 द्वारा कलर स्कैन होकर राहुल ऑफसेट वर्क्स ए-44, नारायणा इंडस्ट्रियल एरिया फेज़ II, नई दिल्ली 110 028 द्वारा मुद्रित।

प्राक्कथन

विद्यालय शिक्षा के सभी स्तरों के लिए अच्छे शिक्षाक्रम, पाठ्यक्रमों और पाठ्यपुस्तकों के निर्माण की दिशा में हमारी परिषद् पिछले पच्चीस वर्षों से कार्य कर रही है। हमारे कार्य का प्रभाव भारत के सभी राज्यों और संघशासित प्रदेशों में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से पड़ा है और इस पर परिषद् के कार्यकर्ता संतोष का अनुभव कर सकते हैं।

किंतु हमने देखा है कि अच्छे पाठ्यक्रम और अच्छी पाठ्यपुस्तकों के बावजूद हमारे विद्यार्थियों की रुचि स्वतः पढ़ने की ओर अधिक नहीं बढ़ती। इसका एक मुख्य कारण अवश्य ही हमारी दूषित परीक्षा-प्रणाली है, जिसमें पाठ्यपुस्तकों में दिए गए ज्ञान की ही परीक्षा ली जाती है। इस कारण बहुत ही कम विद्यालयों में कोर्स के बाहर की पुस्तकों को पढ़ने के लिए प्रोत्साहन दिया जाता है, लेकिन अतिरिक्त पठन में बच्चों की रुचि न होने का एक बड़ा कारण यह भी है कि विभिन्न आयुवर्ग के बच्चों के लिए कम मूल्य की अच्छी पुस्तकें पर्याप्त संख्या में उपलब्ध नहीं हैं। यद्यपि पिछले कुछ वर्षों में इस कमी को पूरा करने के लिए कुछ काम प्रारंभ हुआ है, पर वह बहुत ही नाकाफी है।

इस दृष्टि से परिषद् ने बच्चों के लिए पुस्तक लेखन की दिशा में महत्वाकांक्षी योजना प्रारंभ की है। इसके अंतर्गत "पढ़ें और सीखें" शीर्षक से एक पुस्तकमाला तैयार करने का विचार है, जिसमें विभिन्न आयुवर्ग के बच्चों के लिए सरल भाषा और रोचक शैली में अनेक विषयों पर बड़ी संख्या में पुस्तकें तैयार की जाएगीं। हम आशा करते हैं कि 1989 के अंत तक हम

निम्नलिखित विषयों पर हिन्दी में सौ पुस्तकें प्रकाशित कर सकेंगे।

(क) शिशुओं के लिए पुस्तकें
(ख) कथा साहित्य
(ग) जीवनियाँ
(घ) देश-विदेश परिचय
(ङ) सांस्कृतिक विषय
(च) वैज्ञानिक विषय
(छ) सामाजिक विज्ञान के विषय

इन पुस्तकों के निर्माण में हम प्रसिद्ध लेखकों, अनुभवी अध्यापकों और योग्य कलाकारों का सहयोग ले रहे हैं। प्रत्येक पुस्तक के प्रारूप पर भाषा, शैली और विषय-विवेचन की दृष्टि से सामूहिक विचार करके उसे अंतिम रूप दिया जाता है।

परिषद् इस माला की पुस्तकों को लागत-मूल्य पर ही प्रकाशित कर रही है, ताकि ये देश के हर कोने में पहुँच सकें। भविष्य में इन पुस्तकों का अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद कराने की भी योजना है।

हम आशा करते हैं कि शिक्षाक्रम, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों के क्षेत्र में किए गए कार्य की भाँति ही परिषद् की इस योजना का भी व्यापक स्वागत होगा।

प्रस्तुत पुस्तक "सूरज चमके आधी रात : नार्वे" के लेखन के लिए श्री हिमांशु जोशी ने हमारा निमंत्रण स्वीकार किया, जिसके लिए हम उनके अत्यंत आभारी हैं। जिन-जिन विद्वानों, अध्यापकों और कलाकारों से इस पुस्तक को अंतिम रूप देने में हमें सहयोग मिला है उनके प्रति मैं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

हिन्दी में "पढ़ें और सीखें" पुस्तकमाला की यह योजना प्रो० अनिल विद्यालंकार के मार्गदर्शन में चल रही है। उनके सहयोगियों में श्रीमती संयुक्ता लूथरा, डॉ० रामजन्म शर्मा, डॉ० सुरेश पाण्डेय, डॉ० हीरालाल बाछोतिया, डॉ० अनिरुद्ध राय और डॉ० स्नेहलता प्रसाद सक्रिय सहयोग दे रहे हैं। विज्ञान की पुस्तकों के लेखन का मार्गदर्शन राजस्थान विश्वविद्यालय के भूतपूर्व कुलपति डॉ० रामचरण मेहरोत्रा कर रहे हैं और इन पुस्तकों के लेखन में हमारे विज्ञान एवं गणित शिक्षा विभाग के डॉ० रामदुलार शुक्ल सहयोग दे रहे हैं। योजना के संचालन में डॉ० बाछोतिया विशेष रूप से सक्रिय रहे हैं। मैं डॉ० रामचरण मेहरोत्रा

को और अपने सभी सहयोगियों को हार्दिक धन्यवाद और बधाई देता हूँ।

इस माला की पुस्तकों पर बच्चों, अध्यापकों और बच्चों के माता-पिता की प्रतिक्रिया का हम स्वागत करेंगे, ताकि इन पुस्तकों को और भी उपयोगी बनाने में हमें सहयोग मिल सके।

पी० एल० मल्होत्रा

निदेशक

नई दिल्ली

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

गांधी जी का जन्तर

तुम्हें एक जन्तर देता हूं। जब भी तुम्हें सन्देह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे, तो यह कसौटी आजमाओ :

जो सबसे गरीब और कमजोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शकल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा। क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुंचेगा? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा? यानि क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त है?

तब तुम देखोगे कि तुम्हारा सन्देह मिट रहा है और अहम् समाप्त होता जा रहा है।

मो क गांधी

लेखकीय

बचपन में कभी सुना था — एक देश है नार्वे, उत्तरी ध्रुव के पास। जहाँ छह महीने का दिन होता है, छह महीने की रात। आधी रात को भी सूरज चमकता है। जहाँ चारों ओर बर्फ ही बर्फ होती है। जहाँ बर्फ पर बिना पहिए की स्लेज गाड़ियाँ चलती हैं, जिन्हें कुत्ते खींचते हैं। जहाँ हजारों की संख्या में रेण्डियर होते हैं। सफेद भालू भी।

उसी स्वप्नलोक में मुझे कई बार जाने का अवसर मिला। जो अद्‌भुत बातें कभी सुनी थीं, उन्हें आँखों से देखने का प्रत्यक्ष अनुभव भी हुआ।

एक स्वच्छ देश। बर्फ, झीलों और फीयोर्डों का। जहाँ धूल नहीं। धुआँ नहीं। दर्पण-सा निर्मल वातावरण है।

और भी क्या-क्या है, उसका चित्रण है यहाँ। आइए, इसी परीलोक की यात्रा में आप भी चलिए मेरे साथ। एक निराले संसार में।

हिमांशु जोशी
7/सी-2 हिंदुस्तान टाइम्स अपार्टमेंट्स
मयूर विहार, फेज़-1, दिल्ली-110 091

विषय-सूची

प्राक्कथन

अनोखी धरती पर

एक नगर : ओस्लो

कुछ अनुभव

चलता-फिरता विश्वकोश

क्रागेरा की ओर

अंतिम द्वीप तक

सफेद बर्फ की हरी फसल

8. टेलीमार्क की ओर

9. चाँदी की खानें

10. भारी पड़ा भारी पानी

11. आर्ने ने कहा

12. सीगरी के घर

13. ब्यौंसन : सोचनेवाली टोपी

14. जहाँ इब्सन ज़िन्दा हैं

15. परीलोक की सैर

16. धुर ध्रुव प्रदेश में

17. जहाँ स्लेज गाड़ियाँ चलती हैं

18. लैप लोगों का देश

चित्र 1   दो बालिकाएं

1

अनोखी धरती पर

हरे-भरे द्वीप। नीला जल। नीला आकाश। डेनमार्क की राजधानी कोपनहेगन से हम आगे उड़ रहे हैं — एक अनोखे देश की ओर। जहाँ छह महीने का दिन होता है। छह महीने की रात। सूरज दिन में ही नहीं, आधी रात को भी चमकता है।

विमान ओस्लो की ओर उड़ रहा है।

अब द्वीप नहीं हैं। धरती के छोटे-छोटे पैबंद दीख रहे हैं। समुद्र का रंग भी बदल रहा है। जमीन से जुड़ी हरियाली है। गहरी हरियाली।

विमान झुक रहा है। धीरे-धीरे! बहुत धीरे, धरती की ओर फिसल रहा है।

मैं खिड़की से नीचे झाँक रहा हूँ——

सागर के किनारे को छूता हवाई-अड्डा है — ओस्लो का। यानी नार्वे की राजधानी का।

एक हल्का-सा झटका लगता है — पहियों का हवाई-पट्टी की जमीन से टकराने का और फिर पट्टी पर मुक्त भाव से भागने लगता है। लड़खड़ाता हुआ।

हम सब एक-एक कर उतरते हैं।

इस समय रात के साढ़े दस बज रहे हैं। परन्तु मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता, जब मैं चारों ओर चमकती धूप देखता हूँ।

कबूतर के आकार के पक्षी। सीगल यानी सागर पाँखी। झुण्ड की शक्ल में उड़ रहे हैं। एक अजीब-सी "कोंई-कोंई" की आवाज! पंख फड़फड़ाने का स्वर।

पहाड़ियों का हलका-सा ढलान। उसी पर चादर की तरह फैला है, यह शहर। खूबसूरत मकान। जिनका निचला हिस्सा सीमेंट और पत्थर का होता है, शेष ऊपर का भाग लकड़ियों का। प्राय: सभी मकान इसी तरह के दीख रहे हैं।

हर घर के आस-पास बगीचा बनाने की सुंदर परंपरा है। हरी-हरी मुलायम दूब। रंग-रंग के फूल पौधे। कहीं-कहीं चेरी, आड़ू, सेब के वृक्ष। क्यारियों में पालक, गोभी, सलाद के चौड़े-चौड़े हरे पत्ते!

सब कितना सुरुचिपूर्ण लग रहा है!

जो भी अतिथि आता है पहले बाग-बगीचे को देखने का आनंद उठाता है। यह एक परंपरा जैसी है यहाँ की।

वह हर फूल हर पत्ती का जायजा लेता है,"क्या अच्छी सब्जियाँ उगाई हैं! यह देखो, कितना सुंदर है यह फूल! एकदम ताज़ा! सुर्ख।... चेरी का तो जवाब नहीं। मीठी होगी न! खूब मीठी!"

"खा कर देखिए!"

"वाह, मज़ा आ गया।"

सचमुच में पौधे उगाना बहुत कठिन काम है नार्वे में। ध्रुव प्रदेश से जुड़ा है न! इसलिए साल में छह महीने से अधिक बर्फ से ढका रहता है। तापमान शून्य से भी नीचे। कभी-कभी तो 30-40 डिग्री कम चला जाता है। महीनों तक हिम ही हिम! सफेदी ही सफेदी! आँखें सफेदी के अलावा कुछ और देखने के लिए तरस उठती हैं।

इसलिए हर घर के भीतर हरी बेलें दीखती हैं। चौड़े पत्ते वाले पौधे। इतनी भीषण सर्दी में इन पौधों को जीवित रख पाना बड़ा कठिन होता है न!

हरियाली और फूल!

इनका महत्व घोर सर्दी में रहने वाले लोग ही समझ सकते हैं। गुलाब की एक-एक कली चालीस पचास रुपए से कम में क्या मिलेगी।

ज्यों ही बर्फ पिघलती है, लोग घरों के बाहर क्यारियाँ साफ करने लगते हैं और कुछ ही दिनों में उनमें से अंकुर झाँकने लगते हैं। ज्यों-ज्यों पौधे बड़े होते हैं, इनकी खुशियाँ भी खिलने लगती हैं।

अपनी मेहनत से उगाई सब्जी का स्वाद कैसा होता है, इसे नार्वेजियन से अधिक और कौन जानता होगा।

खुल जा सिम सिम

प्रवासी भारतीय भी कभी-कभी कहीं दीख जाते हैं ओस्लो में। इनकी संख्या 1600-1700 से अधिक क्या होगी। पर हाँ, प्रवासी पाकिस्तानियों की संख्या इनसे कहीं अधिक है। परंतु यहाँ के नार्वेजियन-समाज में भारतीय बड़ी प्रतिष्ठा की निगाह से देखे जाते हैं, पश्चिमी दुनिया में भारतीयों का जितना सम्मान नार्वे में है, उतना शायद ही किसी अन्य देश में होगा।

चित्र 2 — सूरज चमके आधी रात

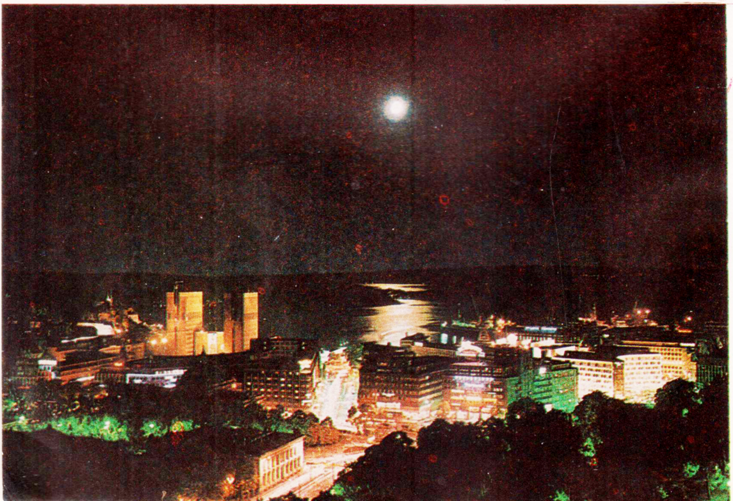

चित्र 3 — नार्वे के बच्चे

सड़क पर एक बूढ़ा नार्वेजियन चल रहा है। चलते-चलते पूछता है, "क्या आप किस्तानी हैं?"

"नहीं, नहीं, भारतीय.... !

वह अजीब-सा मुँह बनाता है, "कमबख्त, हर पाकिस्तानी यही कहता है कि भारतीय ।"

शाम को एक मित्र भोजन के लिए आमंत्रित करते हैं। भारतीय मूल के हैं। 20-25 ल से नार्वे के निवासी हैं।

विदेशों में हमारे लिए भोजन की समस्या रहती है। हम भारतीय मसालेवाला गरम ना पसंद करते हैं, किंतु नार्वे का हिसाब कुछ दूसरा ही लगता है। यहाँ अधिकतर ठंडा खाने रिवाज है। दूध भी ठंडा! डबल रोटी! कच्चा माँस! प्राय: सब कुछ कच्चा!

हाँ, पनीर तरह-तरह का होता है यहाँ। मक्खन भी खूब। दही भी दूध की तरह कागज की चौकोर बोतलों में बिकता है। जिन्हें बोतल के मुकाबले में डिब्बा कहना अधिक उचित रहेगा।

उन्हीं में मुँह लगाकर, लोग पानी की तरह गटक जाते हैं।

यहाँ हर कार्य वैज्ञानिक ढंग से होता है।

दूध भी मशीन से साफ किया जाता है। दूध में पानी भी मिलाया जाता है, ये लोग नहीं जानते। शरीर पर मोटापा न बढ़े, इसलिए मक्खन निकाला दूध ही अधिक पिया जाता है।

गायों का देश है नार्वे!

विशालकाय मोटी-मोटी गाएँ। सीधा सादी। बिना सींगों वाली, एक-एक बार में पन्द्रह-बीस किलो दूध देना आम बात है। दूध निकालना, चारा काटना, सारे काम मशीन से होते हैं। किसानों का खर्चा अधिक आ जाता है। इसलिए सरकार महंगे भाव पर दूध खरीदती है और सस्ते भाव पर आम लोगों को बेचती है।

सैलानी भारतीयों की रुचि यहाँ के निवासियों की रुचि से कुछ भिन्न होती है। इसलिए उन्हें अपने घर के जैसे भुने, तले, मसालेवाले, गरम खाने की तलाश रहती है। चावल, रोटी मिलें तो क्या कहने!

अत: कभी कोई भारतीय मित्र भोजन के लिए आमंत्रित करता है तो मना नहीं कर पाता हूँ।

मित्र के घर जाता हूँ। यानी कहिए कि मित्र स्वयं आकर मुझे घर ले जाते हैं।

''मोल्ले फास्ट'' नामक एक अच्छी बस्ती में मकान है। अपना मकान। नार्वेजियनों के बीच में अकेले भारतीय!

जापानी कार है— वातानुकूलित!

रहन-सहन किसी भी नार्वेजियन से कम नहीं।

कारों को रखने का गैरेज जमीन के अंदर है। जैसे ही कार में बैठे-बैठे गैरेज के बंद

दरवाजे के पास पहुँचते हैं. गैरेज का लोहे का द्वार खुल जा सिम-सिम की तरह खुल जाता है।

मैं देख रहा हूँ अपनी जेब से उन्होंने कोई यंत्र बाहर निकाला था।

कार को आराम करने के लिए वहीं छोड़कर हम बाहर आते हैं तो फिर "बंद हो जा सिम-सिम" की तरह अपने आप द्वार बंद भी हो जाता है।

है न चमत्कार !

बाहर खेल के मैदान में बहुत-से कीमती खिलौने यों ही पड़े हैं। वे अपने बच्चों के खिलौने दूर से ही पहचान जाते हैं. अभी कुछ ही दिन पहले वे जर्मनी से खरीदकर लाए थे।

"खेलने के बाद बच्चे खिलौने घर क्यों नहीं ले जाते? क्या यहाँ चोरी होने का डर नहीं...?" मैं अभी कह ही रहा था कि वे जोर से हँस पड़ते हैं, "यहाँ कोई किसी की चीज उठाता नहीं ! इसलिए सब इसी तरह पड़ा रहता है...।"

उनका घर वैसे ही सजा है, जैसे नार्वेजियनों के घर सजे रहते हैं। यह गर्मी का मौसम है। उन्होंने सैकड़ों क्रोनर (नार्वे के रुपए को क्रोनर कहते हैं) खर्च करके बाहर पीले, लाल, गुलाबी फूल गमलों में उगाए हैं।

बरामदे के बाद जहाँ से कमरा शुरू होता है,वहीं से फर्श पर बिछा कालीन भी शुरू हो जाता है। वह सीढ़ियों से होता हुआ, ऊपर की मंजिल तक चला जाता है। रसोई के अलावा सब जगह कालीन है। नहाने-धोने के कमरे में भी।

इस मकान का भी पूरा ऊपरी हिस्सा लकड़ी का है। भयंकर शीत में भी घर को गरम रखने की पूरी व्यवस्था है। इसलिए बारह महीनों तक बर्फ पड़ी रहे, इनकी बला से।

अर्से बाद घर का जैसा भोजन मिला है। दाल है। रोटी है। चावल हैं। अचार है। पापड़ है।

हिंदी में बात करना भी बड़ा अच्छा लग रहा है। कुछ क्षणों के लिए लगता ही नहीं कि हम कहीं परदेस में हैं। भारत में होने का भ्रम पैदा होता है।

मित्र का परिवार वर्षों पहले दिल्ली का ही निवासी था। साधारण-सी नौकरी थी। दो-तीन कमरे का घर। पर यहाँ नार्वे में इतना बड़ा बंगलानुमा मकान है। कार है। सारी सुख-सुविधाएँ हैं। इसलिए सबकी आकृतियों में एक तरह का संतोष का भाव दीख रहा है। कठोर श्रम के बाद, सफलता का आह्लाद!

नन्हीं बच्ची भोजन के बाद चुपचाप उठती है। फ्रिज में से भुट्टा उठाकर लाती है।

"आप भुत्ता खाना पसंद करेंगे?" बड़ी ही आत्मीयता से पूछती है।

नार्वे में भुट्टा!

मैं पालिथिन के आवरण में लिपटे भुट्टे को देखता हूँ। हल्का पीला! नन्हा-सा, बिना मूछों वाला!

इसमें एक छोटा-सा गोल स्टिकर लगा है। लिखा है — जंजीबार, अफ्रीका।

"कितने का है?" पूछता हूँ।

मित्र उत्तर देते हैं, "चौदह क्रोनर!"

यानी इक्कीस रुपए!

"यहाँ हर चीज महंगी मिलती है। भारत के मुकाबले तो और भी अधिक।"

फ्रिज में से वे लगभग आधा किलो वजन का छोटा-सा कद्दू लाते हैं। उस पर भी पालिथिन लिपटा है ताकि सूखे नहीं! लाल रंग का एक स्टिकर इस में भी लगा है। यह भी अफ्रीका से आया है।

"कितने का है?"

"साठ क्रोनर का।"

एक शिमला मिर्च 25-30 रुपये की।

मुझे याद आता है—

कल मैं टैक्सी से बाजार जा रहा था। टैक्सी का मीटर सफर की दूरी के हिसाब से नहीं बल्कि समय के हिसाब से चल रहा था — मिनट, सेकंड के गणित से।

कॉफी का एक प्याला पन्द्रह रुपए में।

"यहाँ इतनी महंगाई क्यों है ?" पूछता हूँ !

"आमदनी भी इसी अनुपात में ज्यादा है। जहाँ एक घंटे की मजदूरी सौ-डेढ़ सौ क्रोनर हो वहाँ वस्तुओं की कीमत कुछ अधिक भी हो तो आश्चर्य नहीं ?" वे उत्तर देते हैं।

हम भारतीय रुपए के हिसाब से सारी वस्तुओं का हिसाब लगाते हैं। इसलिए कुछ भी खरीद पाना कठिन हो जाता है ! गले के नीचे कुछ उतरना ही नहीं।

भोजन के पश्चात बाहर आते हैं।

रात के ग्यारह बज रहे हैं।

पर अभी भी धूप है। उजाला है। हाँ सड़कों पर चहल-पहल नहीं। सन्नाटा है। इसी सन्नाटे से लगता है कि यह रात है। नहीं तो दिन और रात में कहीं कोई अंतर नहीं।

मैं देखता हूँ—

लोग अपने-अपने घरों में सो रहे हैं। उजाले में सोना कुछ कठिन रहता है। इसलिए खिड़कियों पर मोटे-मोटे दोहरे पर्दे हैं।

नार्वेजियन प्राय : समय पर ही सो जाते हैं। परन्तु भारतीय या पाकिस्तानी या अफ्रीकी रात को भोजन देर से लेते है और देर तक जागते रहते हैं जब तक अंधेरा न हो — चारों ओर, उन्हें लगता ही नहीं कि रात है।

रात का भोजन नार्वेजियन लोग प्राय : शाम को छह-सात बजे तक हर हालत में ले लेते हैं। इसलिए सारे रेस्तराँ छह बजे तक बंद हो जाते हैं।

शाम होते ही बाजार बंद दीखते हैं। सड़कों पर इक्का-दुक्का आदमी। लगता है, कहीं भटककर न आ गया हो !

सड़कें भी सूनी-सूनी। हाँ, पार्कों में अवश्य कुछ लोग चहल-कदमी करते दीखते हैं। समुद्र में बहुत-सी नावें तैरती दीखती हैं। आधुनिकतम सुविधाओं वाले बड़े-बड़े स्टीमर फीयोर्ड को पार करते हुए। यूरोपीय देशों से आते हुए या कोपनहैगन, हैम्बर्ग या इंग्लैंड, जर्मनी की ओर जाते हुए।

जहाजरानी के क्षेत्र में नार्वे का अपना विशेष स्थान है। संसार के देशों में अग्रणी। यहाँ

बने सुंदर, सुदृढ़ जहाजों को देखने भर से अनुमान लगाया जा सकता है कि इस दिशा में नार्वे कहाँ तक आगे बढ़ गया है।

मुझे याद आता है—

हमारे देश ने भी दक्षिणी ध्रुव प्रदेश-अभियान में भाग लिया है। कई बार हमारे वैज्ञानिक वहाँ की सफलतापूर्वक यात्रा कर चुके हैं। इस काम के लिए जिस सुविधापूर्ण आधुनिकतम जहाज का उपयोग होता है, वह नार्वे में ही बना है।

□ □ □

ध्रुव प्रदेश का भालू

2

एक नगर : ओस्लो

अनेक दर्शनीय स्थल हैं ओस्लो में।

यहाँ गर्मियों के ही नहीं जाड़ों के खेल भी बहुत लोकप्रिय हैं। इसलिए कुछ लोग ओस्लो को स्कीईंग यानी बर्फ में खेले जाने वाले खेलों की राजधानी भी कहते हैं।

यहाँ अनेक संग्रहालय हैं। पुराने हैं कई, और आधुनिक भी कुछ कम नहीं। जिनका ऐतिहासिक महत्त्व है।

सबसे पहले पुराना किला देखने जाते हैं। सैकड़ों वर्ष पुराना है फिर भी नया-नया जैसा लगता है। सागर की लहरें इसकी फौलादी दीवारों से दिन-रात टकराती रहती हैं।

कठोर चट्टानें इसकी नींव पर हैं। थोड़ी-सी ऊँचाई पर होने के कारण लहरें ऊपर तक नहीं आ पातीं। अपना आक्रोश नीचे से ही दिखलाकर, टूट-टूट कर चूर होकर, सागर में ही समा जाती हैं।

सीढ़ियाँ पार कर ऊपर पहुँचता हूँ। चबूतरा-सा बना है यहाँ। रैलिंग के सहारे खड़े होने पर ठीक नीचे ठठाके मारता हुआ सागर दीखता है।

बाईं ओर राजमहल है। पुराना। राजाओं के ऐतिहासिक राजसी ठाठ !

चित्र 5 – ओस्लो की की एक सड़क

सजे-सँवरे कमरे। कीमती फर्नीचर। दीवारों पर प्राचीन वैभव के प्रतीक, विशाल तैलचित्र। राजाओं के दैनिक जीवन के उपयोग की अनेक बहुमूल्य वस्तुएँ।

किले की दीवार से देखता हूँ — फीयोर्ड की ओर। जहाँ अथाह जल है। भीषण लहरों का संग्राम छिड़ा है।

मुझे इस किले को देखकर दिल्ली का लालकिला याद आता है। लालकिले की अपेक्षा यह छोटा है, परंतु महत्व में किसी से भी कम नहीं।

नार्वेजियन इस ऐतिहासिक किले का नाम बड़े गर्व से लेते हैं। कहते हैं — दूसरे विश्वयुद्ध के समय इस किले ने बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। जर्मन नाजियों का समुद्री बेड़ा ओस्लो फीयोर्ड से शहर के समीप तक पहुँच गया था। उनके युद्धपोतों ने यहाँ भयंकर गोलाबारी की, पर किला जीत न पाए।

इसका परिणाम यह रहा कि नाजियों का आगे बढ़ना रुक गया और ओस्लो में अधिकार जमाने में दो-तीन दिन का विलम्ब हो गया। जिसका लाभ रहा— राजा, संसद के सदस्य तथा देश के कई महत्वपूर्ण व्यक्ति सुरक्षित स्थानों में छिपने में सफल हो गए। उन्होंने कुछ समय बाद वहाँ अपनी प्रवासी सरकार बना ली।

नाजियों ने ओस्लो को जीत लिया पर वे जान-माल की अधिक क्षति न कर पाए। एक विनाशलीला होने से पहले ही समाप्त हो गई।

किले के भीतर जाकर देखते हैं। सारा सामान वैसे ही सजाकर रखा है, जैसा सदियों पहले था, जब राजा इस में रहते होंगे।

मौंक से मुलाकात

अब मैं चित्रकार एडवर्ड मौंक से मिलने जा रहा हूँ।

अरे, हद हो गई! मौंक की मृत्यु तो सन 1944 में हुई थी और मरने के इतने वर्षों बाद... !

हाँ, भाई, ठीक है, शारीरिक रूप से मौंक नहीं रहे परंतु जब तक उनकी पेंटिंग्ज हैं, वे जीवित हैं।

मैं उनकी जीवंत पेंटिंग्ज देखने जा रहा हूं — "मौंक-म्युजियम" यानी मौंक संग्रहालय में।

मेरे मन में कहीं गहरा उल्लास है। जिस विश्वविख्यात चित्रकार के चित्रों की अनुकृतियां इतने वर्षों से देखता आ रहा हूं उन्हें मूल में भी देखने का सौभाग्य मिलेगा... ! नार्वे के सब से प्रतिष्ठित चित्रकार हैं। दुनिया में जिनके चित्रों को विशेष सम्मान के साथ देखा जाता है।

मौंक के चित्रों की अपनी अलग विशेषता है। विश्वप्रसिद्ध नाटककार इब्सन की तरह इनके चित्रों के दीवाने भी दुनिया में कम नहीं। मनुष्य का मृत्यु से साक्षात्कार — इनके चित्रों में एक प्रमुख भावना है। उन्होंने लेंडस्केप भी कम नहीं बनाए।

अपनी मृत्यु से पूर्व अपने चित्रों का सारा संग्रह उन्होंने ओस्लो नगरपालिका को दे दिया था। जिसमें लगभग 1100 तैल चित्र थे। 4500 ड्राइंगें थीं — जल रंगों की और ग्रेफिक्स की अनुकृतियां थीं लगभग 18000।

हरे-भरे दूब के मैदान के बीच यह संग्रहालय है। बड़ा कलात्मक। बड़ा भव्य। वातानुकूलित।

इसमें प्रवेश करते ही लगता है जैसे रंगों के रंग-बिरंगे जादुई संसार में आ गए हों। विशाल-कला दीर्घाएं हैं। जिनमें मौंक के बहुमूल्य चित्र बड़े करीने से सजाकर रखे गए हैं। यह देखकर कहीं बड़ी खुशी होती है कि नार्वे निवासी अपने कलाकारों का कितना सम्मान करते हैं। उन्हें कितना स्नेह देते हैं ! उन पर कितना गर्व करते हैं।

नार्वे में सब से बड़ा नोट होता है— एक हजार क्रोनर का। कल मैंने देखा था, उस में विख्यात नाटककार इब्सन का रेखाचित्र बना है।

इसी तरह का भाव मौंक के प्रति भी है।

पर्यटक ओस्लो आएं और मौंक संग्रहालय देखे बिना चले जाएं — यह असंभव है।

फर्श पर हल्के हरे रंग के कालीन हैं। बिना खंभों का एक बहुत बड़ा कमरा। छत पर से पड़ती रोशनी की व्यवस्था बड़े वैज्ञानिक ढंग से की गई है जो कलात्मक भी कुछ कम नहीं। छोटे-छोटे बच्चों को भी साथ लिए लोग मौंक की अमर कृतियां देखने आ रहे हैं। कहीं कोई

शोर नहीं। कहीं कोई धक्का-मुक्की नहीं।

एक स्थान पर लिखा है—

"अच्छी कलाकृति को समझने के लिए अच्छा दर्शक होना भी अनिवार्य है।"

मौंक ने बिखरे बालोंवाली इस महिला का चित्र कैसे बनाया था ? कब बनाया था ? कहाँ बनाया था ? गाइड एक-एक बात को बड़ी बारीकी से दर्शकों को समझा रहा है। एक विदेशी चित्रकार सफेद कागज पर स्कैच बना रहा है।

एक काउण्टर पर मौंक के चित्रों की अनुकृतियाँ हैं। मौंक की कलाकृतियों पर आधारित कलेण्डर हैं। दर्शक सौगात के रूप में इन्हें अपने घर ले जाते हैं।

इन चित्रों की अनुकृतियों से बड़ा उपहार और क्या हो सकता है ?

कुछ उपहार मैं भी खरीद लेता हूँ — एक यादगार के रूप में। म्यूजियम से बाहर निकलता हूँ तो मन में कहीं गहरा संतोष लगता है।

देखता हूँ — एक वृद्ध नार्वेजियन लाठी के सहारे झुक-झुककर चलते हुए आ रहे हैं। कारिडोर में क्षण भर के लिए रुकते हैं। बिना किसी भूमिका के पूछते हैं, "आप भारत से आए हैं ?"

मैंने विशुद्ध भारतीय पोशाक पहनी है — कुर्ता, पायजामा, जवाहर कट ! हो सकता है, इसी से अनुमान लगा लिया हो।

मेरे "हाँ" कहते ही वह आगे पूछते हैं, "भारत में कहाँ रहते हैं ?"

"दिल्ली में।" मेरे इतना कहते ही वे बच्चों की तरह खिलखिलाकर हँस पड़ते हैं। "मैंने दिल्ली भी देखी है।" वे बड़े गौरव के साथ कहते हैं — "जब मैं युवा था, एक बार यों ही घूमने निकल गया था — एक व्यापारी जहाज में?"

"कितने वर्ष पुरानी बात है ?" मैं पूछता हूँ।

" यही, तब वहाँ अंग्रेजों का राज था। भारत में स्वाधीनता आंदोलन चल रहा था। दिल्ली में एक जुलूस में पुलिस ने गोलियाँ चलाई थीं। कई लोग मरे थे...।" अपनी रौ में वे कहते चले जाते हैं।

"अब आप कितने वर्ष के होंगे ?" मेरे यह पूछने पर वे जोर से हँस पड़ते हैं। उनके झुर्रियों से ढके चेहरे पर एक साथ अनेक भाव आते हैं। नीली आँखों में अनोखी चमक।

"आप बतलाइए ?"

"नहीं-आप !" मैं गौर से चेहरे की ओर देखता हूँ।

"समझ लीजिए... अस्सी-पचासी के आस-पास... ।"

आम नार्वेजियन से वे अच्छी अंग्रेजी बोल लेते हैं। उच्चारण भी बहुत साफ है। यों नार्वेजियन जब बोलते है, तो लगता है जैसे गा रहे हों।

"मैंने वर्षों तक अध्यापकी की। बर्गन में पढ़ाता था। रिटायर होने के बाद ओस्लो चला आया ..." कुछ रुककर वृद्ध आगे बोलते हैं "दुनिया की सैरें भी कम नहीं की। मेरे एक घनिष्ट मित्र व्यापारिक जहाजों की कम्पनी के मालिक थे। उनकी ही सहायता से मैंने लगभग सारा संसार घूम लिया है। मैंने हाँगकाँग देखा है। जापान, इण्डोनेशिया भी। भारत में भी अनेक शहर देखे हैं। कलकत्ता बड़ा भीड़भाड़वाला शहर लगा मुझे। दिल्ली भी आकर्षक है। ...सुना है, अब तो भारत बहुत बदल गया है। बड़ी तरक्की हो गई है वहाँ।"

"भारत के बारे में आपकी रुचि का कारण क्या है ?" चलते-चलते मैं पूछता हूँ।

उनके पाँवों में कुछ कष्ट है, अत : देर तक खड़ा रह पाना भारी लग रहा है। हम बाहर लॉन में रखी बैंच पर बैठ जाते हैं।

अपनी छड़ी बैंच के सहारे टिकाते हैं। "मैंने बतलाया न कि मैं साहित्य का अध्यापक रहा हूँ। बचपन से मुझे फ्रेंच भाषा के प्रति आकर्षण रहा है। मैंने रोमैं रोला को बहुत पढ़ा था। भारत के विषय में भी उन्होंने बहुत लिखा है। मैंने वह सब पढ़ा। गाँधी, विवेकानंद की जीवनियाँ भी पढ़ीं, रोमैं रोला द्वारा लिखी। उनसे मैं बहुत-बहुत प्रभावित हुआ। बड़ी प्रेरणा मिली, भारत भ्रमण की। इसी के वशीभूत होकर मैं भारत गया ...बुद्ध की एक चंदन की मूर्ति खरीद कर लाया, जो अब तक मेरे ड्राइंग रूम में हैं। मरते समय अपने पोते को दे जाऊँगा। वह धार्मिक प्रवृत्ति का है।"

वे रुक कर पूछते हैं। "ओस्लो में आप कब तक हैं ?"

"अभी कुछ दिनों के लिए तो हूं ही।"

"तो जाने से पहले एक बार हमारे घर अवश्य आइए। वे अपना फोन नंबर तथा घर का पूरा पता लिख देते हैं। मेरे डेरे का पता लेना भी नहीं भूलते।

अपनी व्यस्तताओं के कारण मैं जा नहीं पाता, तो एक दिन आश्चर्य से देखता हूं — वे स्वयं मेरे डेरे में उपस्थित हो जाते हैं। कहते हैं "आप का फोन नंबर मिला नहीं। इसलिए क्षमा कीजिए। बिना वक्त लिए, चला आया हूं।"

"नहीं, नहीं, ऐसी बात नहीं। यह हमारा सौभाग्य है कि आपने आने का कष्ट किया।" मैं स्वागत में उठ खड़ा होता हूं।

आज मुझे कोई खास काम नहीं। इसलिए आराम करने का प्रोग्राम बनाता हूं। शायद यही कारण रहा कि उनका यों बेवक्त आना मुझे अखरा नहीं।

उन्हें सोफे पर बिठाकर मैं चाय की व्यवस्था करने लगता हूं।

"मैंने पढ़ा है, भारत में बड़े-बूढ़ों का बड़ा सम्मान होता है। वृद्ध होना सौभाग्य की बात समझी जाती है। किन्तु यहां का दृष्टिकोण कुछ भिन्न है...।"

"पश्चिमी देशों का सोचने का नजरिया भिन्न क्यों है ?" मैं पूछता हूं।

"हमारी नई संस्कृति का प्रभाव है। लोग अपने बारे में अधिक सोचने लगे हैं। अपने ही कामों में इतने उलझे रहते हैं कि दूसरों के बारे में सोचने-समझने का उन्हें समय ही नहीं मिल पाता...।" वे कुछ रुककर आगे कहते हैं, "बुढ़ापा बूढ़ों के लिए ही एक बोझ बन जाता है।"

"आपके परिवार में कौन-कौन है ?" मैं पूछता हूं।

"मेरा बेटा है — फिन! बहू है। पोती है, जो होस्टल में रहकर पढ़ रही है। पोता है।"

"आपका बेटा तो आपका ध्यान रखता होगा ?" मैं प्रश्न पूछता हूं।

"उसके पास समय ही कहां है ? उसकी पत्नी को जैसे मुझसे कोई सरोकार नहीं है। बेटे

की यह दूसरी पत्नी है। पहली तलाक देकर चली गई थी। स्वभाव से यह भी वैसी ही है तुनक मिजाज ! कभी भी तलाक दे सकती है। वे इन दिनों गर्मी की छुट्टियाँ बिताने अमेरिका गए हैं। यहाँ मैं अकेला हूँ। क्या करूँ, वक्त काटे नहीं कटता। कोई ऐसा नहीं, जिससे बोल सकूँ ! बतिया सकूँ। घर में टेलीविज़न की आवाज के अलावा और कोई आवाज सुनाई नहीं देती। कभी-कभी तो आदमियों के मुँह से कुछ सुनने के लिए तरस जाता हूँ...।"

वृद्ध कुछ देर बैठकर चले जाते हैं। और जाते-जाते मेरे सामने बहुत-से सवाल छोड़ जाते हैं।

□ □ □

चित्र 6 — मौंक की अनुकृति

3

कुछ अनुभव

सड़कों पर भीड़ है, परन्तु वैसी नहीं, जैसी दिल्ली, कलकत्ता या बम्बई की सड़कों पर होती है। ओस्लो की आबादी वैसे भी बहुत कम है — दिल्ली की एक कालोनी के बराबर — यानी 5-6 लाख। ट्रामों, बसों की व्यवस्था बहुत अच्छी है। यहां झीलें बहुत हैं। फीयोर्ड भी। इसलिए छोटी-छोटी मोटर-बोटों से भी लोग आया जाया करते हैं। वक्त हो तो पैदल चलना भी बुरा नहीं समझते।

आफिस जाने का समय है। लोग भागते हुए चल रहे हैं। वक्त के बड़े पाबंद हैं। एक मिनट की भी देरी नहीं होनी चाहिए। इसलिए सेंडविच खाते-खाते दौड़ रहे हैं।

मुझे लगता है, नार्वेजियन दोपहर के भोजन को अधिक महत्व नहीं देते। हल्का-फुल्का जो मिल जाता है उसी से काम चला लेते हैं। हाँ, शाम को घर आकर अवश्य खूब डटकर भोजन करते हैं।

इनका रात का खाना हम आम भारतीय की तरह रात के आठ-नौ बजे तक नहीं चलता। शाम को छह बजे के आस-पास मुक्त हो जाते हैं। रात को आवश्यकता होने पर अवश्य कुछ ले लेते हैं, जिसे सपर कहते हैं। चाय, बिस्कुट आदि।

पर हम भारतीयों को इससे परेशानी होती है। शाम छह बजे भूख नहीं लगती। भलीभाँति

खाना नहीं खाया जाता। जिसका नतीजा यह होता है कि रात को भूख लगने लगती है। इसलिए खाने का कुछ हल्का-फुल्का सामान रख लेते हैं।

मैं आज पैदल ही चलने का कार्यक्रम बनाता हूँ। वास्तव में किसी नए स्थान को देखना हो तो सबसे अच्छा तरीका पैदल चलकर देखना ही है। इससे नए स्थानों को हम अच्छी तरह समझ सकते हैं। आम जनता से घुल-मिल सकते हैं। उनके समाज की अच्छाइयों और बुराइयों को परख सकते हैं।

ओस्लो में सबसे बड़ा बाज़ार है — कालजुहान रोड। नई दिल्ली के कनॉट प्लेस की तरह। यहाँ दूकानें हैं। बड़ी-बड़ी इमारतें हैं ऊँची-ऊँची। चारों ओर चहल-पहल है।

प्रमुख दर्शनीय स्थल हैं — नेशनल थियेटर, जिसके बाहर विश्वविख्यात नाटककार हेनरिक इब्सन की विशाल मूर्ति है। हमारे यहाँ काँसे की मूर्तियों पर प्राय: हर साल पॉलिश

चित्र 7 — नार्वे के प्राचीन घर

कर देते हैं, परन्तु नार्वे में यह रिवाज नहीं। जो मूर्ति जैसी है, उसे वैसी ही रहने देते हैं। कंधों पर, सिर पर चिड़ियों की बीट भी दिखलाई देती है।

निकट ही एक विशाल समागार है जहाँ हर साल विश्वशांति के लिए नोबेल पुरस्कार प्रदान किया जाता है। अन्य नोबेल पुरस्कार स्वीडन की राजधानी स्टाकहोम में दिए जाते हैं। केवल यही एक है जिसका दायित्व स्वीडन ने अपने पड़ोसी देश को सौंपा है।

इसके आस-पास बड़े-बड़े डिपार्टमेण्टल स्टोर्स हैं। रेस्तराँ हैं। इन्हीं सड़कों पर से होकर नार्वे के राष्ट्रीय-दिवस का रंग-बिरंगा जुलूस निकलता है। खूबसूरत फव्वारे हैं। इनसे लगे खुले रेस्तराँ। लाल नीले, पीले-चमकीले रंगों का जितना कलात्मक उपयोग नार्वेजियन करते हैं उतना शायद ही कोई अन्य यूरोपीय देश। हर वस्तु करीने से सजी। बाजार दुल्हन की तरह लगते हैं। लगता है, जैसे हर स्थान पर कोई उत्सव हो रहा हो। यहाँ के निवासियों की प्रफुल्लता रंगों के रूप में उभरकर सामने आ जाती है,जिससे हर वस्तु जीवन्त हो उठती है।

कागज का एक भी टुकड़ा कहीं भूल से सड़क पर गिरा नहीं दीखता। न कोई तिनका या छिलका ही। बाहर भीतर हर वस्तु स्वच्छ। सुव्यवस्थित। सुनियोजित। सुनियंत्रित।

इसी सड़क के बाएँ सिरे पर एक पुराना रेस्तराँ है,जहाँ कभी कॉफी पीने के लिए इब्सन घर से पैदल चलकर रोज आया करते थे। रेस्तराँ के एक विशेष स्थान पर एक मेज है। उसी पर इब्सन नियमित रूप से बैठा करते थे। वह मेज आज भी उसी तरह रखी है। वह कुर्सी भी — इब्सन की यादगार के रूप में। कागज के टुकड़े पर लिखा है — यहाँ इब्सन कॉफी पिया करते थे।

दिन के ठीक बारह बजे इब्सन इस रेस्तराँ में प्रवेश करते थे। आस-पास के व्यक्ति इब्सन के आने के समय से अपनी घड़ियों का समय मिलाया करते थे। आश्चर्य की बात तो यह है कि इब्सन कभी भी एक मिनट जल्दी या देर से नहीं पहुँचे।

उन पुराने मकानों के नक्शे अब बदल गए हैं। उस रेस्तराँ का भी। पर बाहर की दीवार पर एक घड़ी आज भी लगी है, इब्सन जिससे अपनी घड़ी मिलाया करते थे।

जैसे ही इस घड़ी ने बारह के घण्टे बजाए नहीं कि इब्सन ठीक इसके नीचे से गुजरते दीखते।

हमारे मेजबान इस रेस्तराँ में काफी पिलाते हैं। बतलाते हैं कि नार्वेजियन आधुनिक होते हुए भी अपनी पुरानी परंपराओं का पूरा-पूरा सम्मान करते हैं। अपने लेखकों पर, विचारकों पर, चित्रकारों पर गर्व करना वे जानते हैं।

हम सडक पर चलते-चलते एक पुस्तकालय के पास पहुँचते हैं। प्राचीन इमारत है— पत्थरों से बनी। बरामदे में पहुँचते हैं। ज्यों ही दरवाजे के पास आते हैं, शीशे का दरवाजा अपने आप खुल जाता है। भीतर पहुँचने पर इसी तरह अपने आप बंद भी हो जाता है।

यहाँ बहुत-सी प्राचीन पुस्तकें सहेज कर रखी हुई हैं। कुछ तो दो-दो, तीन-तीन सौ वर्ष पुरानी भी हैं। साथ ही साथ नई पुस्तकों के भी अंबार लगे हैं। नार्वेजियन पुस्तकें हैं। फ्रेंच हैं। अंग्रेजी हैं। जर्मन हैं — कई भाषाओं की चुनी हुई पुस्तकें हैं।

मैं कुछ और आगे बढ़ता हूँ। यहाँ भारतीय भाषाओं की पुस्तकें सजी हुई हैं। हिंदी, उर्दू, पंजाबी, बंगाली...।

जो प्रवासी भारतीय, बंगला देशी तथा पाकिस्तानी यहाँ रहते हैं उनके उपयोग के लिए है यह पुस्तकालय का कमरा।

नार्वे में प्रवासी लोगों का बहुत ख्याल किया जाता है। यदि किसी भाषा विशेष वाले पाँच-सात विद्यार्थी हों तो उन्हें वह भाषा पढ़ाने की व्यवस्था की जाती है। नार्वे में हिन्दी शिक्षक, उर्दू शिक्षक तथा पंजाबी शिक्षक बहुत बड़ी संख्या में देखे जा सकते हैं।

बर्गन, हास्ता, बूदो आदि शहरों में रहने वाले प्रवासी यदि किसी पुस्तक विशेष की माँग करते हैं तो इसी पुस्तकालय से उन्हें पुस्तक भेजी जाती है और फिर वापस आने पर इसी में रख दी जाती है।

नार्वे में पुस्तकालयों की भरमार है।

बच्चों के लिए विशेष कक्ष हैं, जहाँ भाँति-भाँति की पुस्तकें सजाकर रखी जाती हैं। बच्चे स्वयं जाकर अपनी मन-पसंद पुस्तक लाना नहीं भूलते।

पुस्तकों के पन्ने फाड़ना, पुस्तकों में कुछ लिखना यहाँ अपराध माना जाता है। बच्चे कोशिश करते हैं कि जो पुस्तकें वे ले जा रहे हैं उन्हें गंदी न होने दें।

यहाँ के विद्यार्थी पुस्तकें केवल परीक्षा पास करने के लिए ही नहीं पढ़ते, बल्कि ज्ञान के लिए भी पढ़ते हैं। मनोरंजन के लिए भी।

पत्थरों की जीवित मूर्तियाँ

शाम को सबसे पहले मैं एक अनोखे संग्रहालय को देखने जाता हूँ।

एक बड़ा पार्क है। बहुत बड़ा। हरा, सुंदर, साफ। कलात्मक फव्वारे लगे हैं।

दूर से ही दिखलाई देती हैं यहाँ की पत्थर की मूर्तियाँ। बादामी रंग का पत्थर। आदमी के आकार से भी बड़ी-बड़ी आदमी की मूर्तियाँ। इन्हें जिस निराले कलाकार ने बनाया है उसका नाम है — वोगेलेंड ! यों इसका पूरा नाम है — गुस्तान वोगेलेंड। इस विश्वविख्यात कलाकार ने खुले आसमान के नीचे एक अद्भुत संसार का सपना साकार किया है,जिसे देखने के लिए बड़ी दूर-दूर से कलाप्रेमी आया करते हैं।

सचमुच ये विशाल मूर्तियाँ दर्शकों को अचम्भे में डाल देती हैं। सच नहीं लगता कि किसी एक ही कलाकार ने इतनी सारी विशाल मूर्तियाँ रच डालीं।

फ्रोगनेर स्कल्पचर पार्क की ये मानव प्रतिमाएँ खजुराहो की मूर्तियों से मिलती-जुलती हैं। यह वस्त्र-विहीन संसार अपने आपमें एक अजूबा है।

मनुष्य को एक नया जीवन-दर्शन देने का प्रयास किया है गुस्ताव ने।

पार्क में बैठे एक व्यक्ति किसी से कह रहे हैं, "ऐसा नहीं हो सकता कि कोई व्यक्ति ओस्लो आए, और जीवित प्रतिमाओंवाले इस पार्क की सैर न करे।"

पत्थर के अलावा काँसे की भी यहाँ मूर्तियाँ हैं। आदमी के बचपन से मृत्यु तक की स्थितियाँ बड़ी आत्मीयता से दिखाई गई हैं।

सचमुच नार्वे की मूर्तिकला का यह एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

इस पार्क से बाहर निकलकर हम चुपचाप सड़क पर चलने लगते हैं। ओस्लो में कहीं कोई भिखारी दिखाई नहीं देता। न शहरों के साथ जुड़ी गंदी बस्तियाँ ही दीखती हैं। ऐसा

कोई भी आदमी इस देश में नहीं जिसके पास खाने के लिए रोटी और सिर छिपाने के लिए छत न हो। कल्याणकारी राज्य है न! इसलिए हर किसी के लिए दैनिक जीवन की आवश्यकताएँ सरकार उपलब्ध कराती है।

एक समय वह भी था जब नार्वे यूरोप का गाँव कहलाता था। यहाँ के लोगों के रहन-सहन का स्तर अन्य यूरोपीय देशों के निवासियों से कम आँका जाता था। परन्तु आज स्थिति कुछ दूसरी है। नार्वे के उत्तरी सागर में तथा पश्चिमी तट के पास पेट्रोलियम के अथाह भंडार मिले हैं। समुद्र में से खोदकर बड़े-बड़े पाइपों से तेल प्राप्त किया जाता है। पेट्रोलियम बड़ी उपयोगी वस्तु है। मिट्टी का तेल, पेट्रोल, डीजल — सब इसी की बदौलत है। दुनिया के देशों में जहाँ पेट्रोलियम प्राप्त हुआ, वहाँ-वहाँ कायाकल्प हो गया। इसलिए इसे तरल सोना नाम से पुकारते हैं।

नार्वे में इस तरह समृद्धि का नया अध्याय आरंभ हो गया। वहाँ के निवासियों का जीवन-स्तर आज किसी भी यूरोपियन देश के निवासी से कम नहीं है।

पेट्रोलियम से सम्पन्नता तो अरब देशों में भी आई। परन्तु नार्वे की प्रगति उनके मुकाबले भी बड़ी संतुलित है। बहुत से विकारों से अपने को मुक्त रखने में इन्हें सफलता मिली है।

पूरे नार्वे में केवल ''नेशनल थियेटर'' के पास एक व्यक्ति मुझे दीखता है जो गिटार बजाकर लोगों से पैसे इकट्ठे कर रहा था। इसे भीख माँगना नहीं कह सकते,पर आजीविका का यह तरीका आम लोग पसंद नहीं करते। ऐसा लोगों की आकृति से लग रहा था।

हाँ, इस के साथ ही ऊपर ऊँचे चबूतरे पर अक्सर कुछ निठल्ले युवक अवश्य दिखलाई देते हैं। सिर के बीचोंबीच में आगे से पीछे तक चील के टूटे पंख की शक्ल में, सीधे आसमान की ओर खड़े बाल। शेष सारा सिर एकदम चिकना। घुटा हुआ। नीले, लाल या पीले रंगों से रंगे ये बाल दर्शकों को आकर्षक लगते हैं।

इनके विचित्र बालों की तरह इन की वेशभूषा भी अपने में कम अनोखी नहीं। चमड़े की सारी जैकेट में छोटे बटन के आकार की अनगिनत कीलें। लगता है जैसे कीलों का ही जाकेट

हो। कानों में महिलाओं की तरह लटकते रंग-बिरंगे बुंदे। चेहरे पर एक तरह का वहशीपन। लफंगे-से लगने वाले ये भटके हुए तरुण पश्चिमी समाज की विकृतियों के प्रतीक हैं। अपना आक्रोश ये अधिकतर प्रवासियों पर निकालते हैं। मार-पीट कर बैठना इनके लिए बाएँ हाथ का खेल है। इक्के-दुक्के लोगों को रात-बिरात घेरना भी कम आम बात नहीं। इसलिए इनके सामने पड़ने से बचते हैं। बेकार के लफड़े में कौन पड़े !

यहाँ की भाषा में इन्हें "स्किन हेड" कहते हैं। ऐसे ही लोग इंग्लैंड या अन्य यूरोपीय देशों में भी देखे जा सकते हैं। ये आक्रोशी स्वभाव वाले इंग्लैंड में बसे अफ्रीकियों तथा एशियाई लोगों से जब-तब टक्कर लेते रहते हैं। हिंसा पर उतर कर कभी-कभी खून खराबा मचाने से भी बाज नहीं आते। इसलिए समाचार पत्रों की सुर्खियों में भी रहते हैं। यद्यपि नार्वे में इनकी संख्या नगण्य है,परन्तु विकृति के प्रतीक तो हैं ही।

जैसा कि अभी पहले भी कहा है कि नार्वे एक "वेलफेयर स्टेट" यानी कल्याणकारी राज्य कहलाता है। अपने देश के हित के कार्यों को ये सब से अधिक प्राथमिकता देते हैं। बीमार पड़ने पर लोगों के इलाज की अच्छी व्यवस्था की जाती है। देश के स्वस्थ लोग ही हमारी अमूल्य निधि हैं — इनका नारा है। इसलिए बच्चों के सही निर्माण की दिशा में भी सक्रिय रहते हैं। उनके लिए अच्छे-अच्छे स्कूल हैं। खेलने के लिए पार्क हैं। तैरने के लिए तरणताल हैं। उनका विकास सही दिशा में हो, इसके लिए सदैव तत्पर रहते हैं।

इतना सब करने के बाद भी कोई बिगड़ जाए तो कोई क्या कर सकता है।

□ □ □

चित्र 8 — नीला आकाश : नीला जल

4

चलता-फिरता विश्वकोश

रात को फोन पर डा० कुनुट क्रिस्तियांसन से बातें होती हैं। ये ओस्लो विश्वविद्यालय में प्राध्यापक हैं। भारतीय भाषाओं के प्रकांड पंडित। प्रात: अपने कार्यालय में आमंत्रित करते हैं।

ओस्लो विश्वविद्यालय नार्वे का सब से अच्छा विश्वविद्यालय माना जाता है। सम्पूर्ण स्केण्डेनेविया में इसका अपना विशिष्ट स्थान है। आधुनिक भव्य इमारतें हैं। पठन-पाठन की भी समुचित व्यवस्था।

चाकलेटी रंग की बड़ी-सी इमारत। आठवीं मंजिल में है, डा० कुनुट का कार्यालय।

वे तपाक से मिलते हैं और अपने कमरे में ले जाते हैं।

अल्मारियाँ, रेकें — सब पुस्तकों से अटी पड़ी हैं। इसमें हिन्दी की आधुनिक पुस्तकें हैं। बंगला की हैं। तमिल की हैं। मलयालम की हैं। संस्कृत की हैं। उर्दू की हैं। फारसी की हैं। पश्तू की हैं। बलूची की हैं। सिंधी की हैं। पंजाबी की हैं। और भी पता नहीं किस-किस की हैं।

"ये सारी पुस्तकें पढ़ने के लिए हैं?"

"जी हाँ।"

"बाहर के स्कॉलर आते हैं पढ़ने के लिए?"

"वे आएँ तो अच्छा है। नहीं तो मैं तो हूँ ही।" वे कहते हैं।

मुझे कुछ आश्चर्य होता है, "क्या इन सारी पुस्तकों का उपयोग आप ही करते हैं।"

"हाँ! हाँ!"

"क्या आप इन सारी भाषाओं को जानते हैं?"

"हाँ।"

"इनके अलावा और भी कई भाषाओं को... ?"

"जी हाँ! मैं यहाँ "इण्डो-इरानियन" विभाग का अध्यक्ष हूँ। ये सारी भाषाएँ मैंने किसी मजबूरी में नहीं सीखी, बल्कि यह समझिए कि यह मेरा शौक है।" वे उत्तर देते हैं।

"संस्कृत कहाँ सीखी?" जिज्ञासा से पूछता हूँ।

"भारत में।" वे बतलाते हैं, "लगभग 3-4 साल मैं वाराणसी में रहा। संस्कृत का अध्ययन वहीं किया। संस्कृत के पंडितों से संस्कृत सीखी। वहाँ से जब मैं नार्वे लौटने लगा तो पड़ोसिन वृद्धा ने चलते समय एक लोटा गंगाजल दिया। मैंने कुतूहल से पूछा कि इस पानी का क्या करूँगा? इस पर वे बोलीं— इसे अपने देश ले जाना। गंगाजल बड़ा पवित्र होता है।कभी काम आएगा और मैं अपने साथ ले आया।"

"और क्या-क्या लाए साथ?" मैं पूछता हूँ।

"संस्कृत की पोथियाँ।"

मैंने कल किसी से सुना था कि डा० कुनुट अपने साथ हिन्दुओं के यज्ञोपवीत्त तथा विवाह के अवसर पर पढ़े जाने वाले मंत्रों की पुस्तकें भी लाए हैं। नार्वे में जब किसी भारतीय का विवाह होता है — हिन्दू पद्धति से, तो डा० कुनुट की सेवाओं का लाभ उठाना लोग भूलते नहीं। ऐसे सुअवसर पर ईसाई-धर्म को मानने वाले कुनुट हिन्दू पुरोहित की भूमिका बड़ी

सफलता से निभा लेते हैं।

धार्मिक उदारता का कितना अच्छा उदाहरण है !

भारतीय ही नहीं, पाकिस्तानी प्रवासी भी डा० कुनुट का उतना ही सम्मान करते हैं क्योंकि वे इरानियन-परिवार की प्राय: सभी भाषाओं को भलीभाँति जानते हैं।

''आजकल किस अनुसंधान में लगे हैं।'' पूछता हूँ।

''पाकिस्तान की एक विशेष बोली है जिसके जानने वाले अब केवल 178 लोग रह गए हैं। मैं उस पर खोज कार्य कर रहा हूँ।''

बहुत संकोची स्वभाव। प्रचार से परहेज। किसी सभा-सम्मेलन में जाने से कतराते हैं। आजकल ''हिन्दी-नार्वेजियन शब्दकोश'' में भी काम करवा रहे हैं।

''इन दिनों क्या कोई नई भाषा सीख रहे हैं ?''

''जी हाँ' वे उत्तर देते हैं, ''अभी-अभी मैंने नेपाली सीखी है। नार्वे के कुछ इंजीनियर नेपाल जा रहे हैं। दवाइयों का एक कारखाना बनाना है। मैंने सोचा ये लोग थोड़ी-थोड़ी नेपाली सीख लें तो अच्छा रहेगा। इन्हें काम करने में सहूलियत होगी। इसलिए इन्हें सिखलाने से पहले मैंने स्वयं नेपाली सीख ली...।''

हिमप्रदेश का वह बालक

अभी सुबह है। किन्तु हमारे देश की सुबह से एकदम अलग है। सूरज नहीं निकला है। धुँधला-सा सफेद प्रकाश है।

मैं अकेला ही घूमने निकल जाता हूँ। दूर-दूर तक फैले वृक्ष हैं — देवदार के। वृक्षों के झुरमुट में बिखरे-बिखरे मकान। दिन की चहल-पहल अभी शुरू नहीं हुई। फिर भी सड़कों पर कारें दीख रही हैं। इक्की-दुक्की। इतनी तेज गति से भागती हैं कि दिल में दशहत सी होने लगती है। पता ही नहीं चलता कहाँ से कहाँ निकल गई हैं — तीर की तरह।

सड़क के किनारे-किनारे चल रहा हूँ। शीतल वायु हौले-हौले बह रही है। पक्षी चहचहा रहे हैं। सड़क पर जलती बिजली की बत्तियाँ अभी-अभी बुझी हैं। इनकी अब जरूरत भी नहीं है। हल्का-हल्का धुँधल-धुँधला प्रकाश काम चलाने के लिए पर्याप्त है...।

थोड़ी ही देर में रेल की पटरियाँ ओझल हो जाती हैं। लगता है रेल का यह मार्ग यहीं समाप्त हो गया है। सामने घने वनों का क्षेत्र है — इतने घने कि उस पार क्या है, सूझता नहीं। केवल एक हरा कम्बल सा दूर तक चला गया है।

सीगल पक्षी आसमान में उड़ रहे हैं — एक गोल घेरा बनाकर।

मुझे बहुत अच्छे लगते हैं — सीगल।

उन्हें देखते ही मैं अनुमान लगाता हूँ कि आसपास या तो कोई झील है या फीयोर्ड।

मेरा सोचना सच निकलता है — सामने बहुत लम्बी झील दिखलाई देती है। साफ पानी की निर्मल झील ! पारदर्शी। मन होता है, जी भरकर नहाने का, किन्तु इस सर्दी में नहाना क्या सब के वश की बात है ?

सचमुच ही मुझे आश्चर्य होता है, जब दाहिने किनारे पर बहुत से लोगों को छपाछप पानी में कूदते देखता हूँ। औरत, मरद, बच्चे, बूढ़े मौज से नहा रहे हैं। इस ठंड में। इत्ती सुबह-सुबह। बाप रे ! शरीर में काँटे से उभर आते हैं।

हमारे लिए यह सर्दी कँपानेवाली हो सकती है। असह्य ! किन्तु नार्वे के निवासियों के लिए यह ग्रीष्म ऋतु है। गर्मी का मौसम। साल का सब से सुहाना समय ! इसलिए वे नहाने-तैरने का पूरा-पूरा आनंद लेते हैं। पानी में मछली की तरह निश्चिन्त भाव से पड़े रहते हैं — घंटों तक। कुछ लोग ऐसे भी हैं जो किनारे की चट्टानों पर या रेत में चित लेट कर मीठी धूप का आनंद उठाने में जुटे रहते हैं।

शायद आज कोई छुट्टी का दिन है। इसीलिए सुबह-सुबह यह "स्नान-मेला" जुटा है। ठीक ऐसा ही मेला माघ-स्नान के समय जमुना-तट पर जुटता है।

"क्या सौंगसवान झील यही है ?" मैं साथ चल रहे किन्हीं अपरिचित सज्जन से पूछता हूँ।

"जी हाँ !" वह मुझ अजनबी की ओर तनिक अचरज से देखते हैं — जैसे अरे, इत्ता भी नहीं जानते !

"इडिस्के ?" अजनबी का स्वर है।

"जी हाँ, इंडिस्के!" यानी जी हाँ, भारतीय हूँ।

वह चला जाता है उसी रफ्तार से।

मैं झील के किनारे-किनारे टहलने लगता हूँ। इस तरह भीड़ में भी अकेला घूमना मुझे बहुत अच्छा लगता है। न कोई व्यवधान पहुँचाने वाला! न कोई व्यर्थ की बातों में समय नष्ट करने वाला। जिधर मन हुआ चल दिए। पाँव थक गए तो बेंच का सहारा या किसी चट्टान पर पाँव फैलाकर निश्चिन्त भाव से पड़े रहना। इसका सुख भी कुछ और है।

उत्तरी किनारे पर एकांत अधिक है।

मैं उसी दिशा में सूनी सड़क पर निकल पड़ता हूँ।

यहाँ भोजपत्र के बड़े-बड़े वृक्ष हैं।

वही भोजपत्र जो भारत में भी बहुत पाया जाता है --- हिमालय के पर्वतीय प्रदेशों में।

वही भोजपत्र जिस की छाल पर हमारे ऋषि-मुनियों ने अमर कृतियाँ लिखीं। वेद-पुराण लिखे। गीता-महाभारत लिखी। उस जमाने में आज की तरह कागज का चलन तो था नहीं। इसलिए महत्वपूर्ण ग्रंथ इन्हीं भोजपत्रों पर लिखे जाते थे या फिर कहीं-कहीं किसी देश में चमड़े के ऊपर।

इन वृक्षों को देखते ही मुझे अत्यधिक प्रसन्नता होती है। हिमालय की याद आती है। मैं चुपचाप किसी वृक्ष के नीचे बैठ जाता हूँ। कुछ समय पश्चात उसके तने पर लिपटी छाल यों ही हाथ से खींचकर हटाता हूँ। उन्हें तरतीब से उतारकर एक के बाद एक तह करके रखने लगता हूँ। यही सोचकर कि भारत लौटकर अपने मित्रों को भेंट करूँगा। इन छोटे-छोटे टुकड़ों पर नव-वर्ष या दीवाली की शुभकामनाएँ भी भेजी जा सकती हैं।

यों ही अकेले घूमते-भटकते मुझे अभी थोड़ा-सा ही समय होता है कि सामने से साइकिल पर सवार भूरी दाढ़ीवाले एक सज्जन आते दीखते हैं। साइकिल के पीछे दस-बारह साल का बच्चा भी विराजमान है, जिसके हाथ में कपड़े की पोटली जैसी थमी है।

मुझे देखते ही साइकिल से उतरते हैं और सहज जिज्ञासा से देखने लगते हैं।

"आप यह क्या कर रहे हैं? क्षमा कीजिए..." वह टूटी-फूटी अंग्रेजी में कहते हैं।

मैं भोजपत्र दिखलाता हूं।

"हमारे उत्तरी नार्वे में तो इससे बड़े-बड़े होते हैं...।" वे बतलाते हैं।

"क्या आप उत्तरी नार्वे के निवासी हैं?"

पिता और पुत्र दोनों एक साथ हाँ की मुद्रा में देखते हैं।

"कहाँ के?"

"वार्दोस—धुर उत्तर के। इसके बाद रूस की सीमा आरंभ हो जाती है।"

"वहाँ तो गजब की सर्दी पड़ती होगी...?"

"न पूछिए! वह क्षेत्र ध्रुव प्रदेश में है न! लगभग सारा साल बर्फ रहती है।" कुछ क्षण रुककर वे मुझ से पूछते हैं, "आप एशिया के निवासी लगते हैं।"

मैं मुस्कराता हूं। "जी हाँ भारतीय हूं।"

"इंडिस्के...।" वे आगे कुछ कहते-कहते रुक जाते हैं। अपने पास खड़े बेटे से नार्वेजियन में कुछ कहते हैं, तो वह भी अब कुछ और जिज्ञासा से मेरी ओर देखने लगता है। मैं उनकी भाषा नहीं समझ पाता, परन्तु इतना अवश्य अनुभव करता हूं कि उसे मेरा परिचय पाकर कहीं प्रसन्नता हो रही है...

"इंडिस्के...!" वह भी पूछता है।

"भारत के बारे में कुछ जानते हो?"

लड़का अंग्रेजी नहीं, मात्र नार्वेजियन जानता है। उसके पिता दुभाषिए की तरह हर बात उसे समझाते रहते हैं। जो वह उत्तर देता है, उसका अंग्रेजी में अनुवाद करके मुझे बतलाते हैं।

मेरे इस प्रश्न पर कि वह भारत के बारे में कुछ जानता है,वह असमंजस से केवल सिर हिलाता है, "कुछ... कुछ...।"

"क्या?"

"कि वहाँ साँप होते हैं... मैंने किसी कहानी में पढ़ा था...।"

मैं सहसा हँस पड़ता हूँ। मुझे खुशी होती है और कहीं आश्चर्य भी कि ध्रुव प्रदेश का यह नन्हा बच्चा भारत के बारे में कुछ जानता है। किन्तु साथ ही कहीं दुख भी कि अभी तक दुनिया के लोग भारत को सँपेरों के देश के नाम से ही जानते हैं।

मैं उसे विस्तार से समझाता हूँ कि भारत वैसा नहीं जैसा अंग्रेजों के जमाने में कभी हुआ करता था। वहाँ अब बहुत प्रगति हो गई है। बड़े-बड़े कारखाने हैं। ओस्लो की इमारतों से भी कई गुना बड़ी इमारतें हैं। कल-कारखाने हैं। बड़े-बड़े विश्वविद्यालय हैं। विज्ञान के क्षेत्र में भारत कई सम्पन्न देशों से आगे है।

बच्चा चुपचाप सुनता रहता है— परियों की कहानियों की तरह। पिता बतलाते हैं कि एक बार आस्ट्रेलिया जाते समय वे बम्बई रुके थे कभी। बम्बई अच्छा शहर है। भारत के निवासी बड़े अतिथिप्रेमी होते हैं...।

जल-दस्युओं के जहाज

लकड़ी के ये तीन लंबे, पतले, नुकीले जहाज भी कम आकर्षक नहीं लगते। कहा जाता है कि ये लगभग एक हजार साल पुराने हैं। उससे भी अधिक पुराने हों तो आश्चर्य नहीं।

इतिहासकारों का कथन है कि ये ''ओस्लो फीयोर्ड'' में मिले थे। ''वाइकिंग काल'' में इनका निर्माण हुआ होगा जब कि यूरोपीय देशों में नार्वे के दुर्दांत नाविकों का आतंक था। ''सागरीय लुटेरों'' के नाम से इन्हें संबोधित किया जाता था।

आज हम ओस्लो के ''वाइकिंग संग्रहालय'' में हैं। अपने ढंग का यह एक ही संग्रहालय है। काठ की तीन नुकीली नावें स्टैंड पर सजा कर रखी हुई हैं। इतिहास की ये धरोहरें अतीत की कई कहानियाँ कहती हैं। इनकी बनावट कितनी तीखी है न ! पानी की धार को दो भागों में चीरती हुई ये बड़े वेग से आगे बढ़ती होंगी। समुद्री तूफानों को झेल पाना इन्हीं के बूते का काम रहा होगा।

इनमें एक ''जहाज'' यानी काठ की नौका का नाम है — ''ओसेवर्ग''। इसे पुरातत्ववेत्ताओं ने इस शताब्दी के आरंभ में जमीन से खोद कर निकाला था। बड़े कलात्मक

ढंग से सजा-सँवारा है यह जहाज। इसे देखने मात्र से लगता है कि नार्वे जहाज-निर्माण के क्षेत्र में कितना अग्रणी रहा होगा।

इन्हीं छोटे-छोटे जहाजों के द्वारा नार्वे निवासी हजारों मील लम्बी दुर्गम सागरीय यात्राएँ किया करते थे। हजार साल पहले, जबकि आज की तरह कोई सुविधाएँ उपलब्ध नहीं थीं। केवल काठ की नौका और अंतहीन सागर !

हम नगरपालिका भवन के पास से इस संग्रहालय तक एक छोटी-सी डीजल-बोट द्वारा पहुंचते हैं। केवल कुछ ही किलोमीटर की तो दूरी है। सवारियाँ लेकर बोट एक किनारे से अभी रवाना ही हुई थी कि दूसरा किनारा सामने आ जाता है।

ओस्लो में बस-यात्रियों को जो सुविधाएँ हैं, वे हमारे यहाँ नहीं। एक टिकट पूरे तीन घंटे के लिए मिलता है। इससे आप चाहें तो बस से यात्रा करें, या ट्यूब-ट्रेन से अथवा डीजल बोट से।

नार्वे की आबादी अधिक नहीं है। इसका लाभ सबको मिलता है। इसलिए बसों, ट्रामों या ट्यूब-ट्रेनों में कहीं भी भीड़-भाड़ नहीं दीखती। लोग आसानी से, आराम से एक स्थान से, दूसरे स्थान तक आ-जा सकते हैं।

यहाँ की शांत व्यवस्था देखकर मुझे दिल्ली की भीड़ भरी बसों की याद हो आती है।

नार्वे ही नहीं, पूरे यूरोपीय देशों में एक अच्छी आदत यह भी दीखती है कि लोग हर स्थान पर कतार में खड़े होते हैं। धक्का-मुक्की करना, दूसरों को पीछे धकेल कर आगे बढ़ना इनके यहाँ अशिष्टता समझी जाती है। इसलिए अनुशासन में रहने की इनकी आदत बन गई है। हर यात्री इस बात का ध्यान सदैव रखता है कि किसी दूसरे सहयात्री को उससे असुविधा न हो।

□ □ □

5

क्रागेरा की ओर

बाहर कहीं दूर भी चलना चाहिए अब!

ओस्लो के अलावा और भी कई दर्शनीय स्थल हैं नार्वे में। सबसे पहले हम जाना चाहते हैं — क्रागेरा की ओर।

क्रागेरा ओस्लो से दक्षिण में स्थित है। अनेक छोटे-छोटे द्वीपों का समूह।

ओस्लो से लगभग ढाई सौ किलोमीटर।

हमें प्रसन्नता होती है कि हम केवल क्रागेरा ही नहीं, रास्ते में पड़ने वाले अनेक महत्व-पूर्ण स्थानों को भी देखेंगे। ये स्थल रोचक ही नहीं रोमांचक भी रहेंगे। नार्वे के गाँवों को भी देखेंगे। ग्रामीण लोगों से मुलाकात होगी। कैसे होते हैं नार्वे के गाँव? कैसी व्यवस्था होती है शहरों की? छोटे-छोटे कस्बों की? इन सबसे परिचय होगा। मन में उमंग है। कुछ और नया देखने का उत्साह भी।

आठ बज रहे हैं — सुबह के। नाश्ता अभी पूरा ही हुआ कि पता चलता है — क्रागेरा के लिए जिस बस से हमें जाना है, वह द्वार पर खड़ी है। यात्रियों की प्रतीक्षा है। ठीक सवा आठ बजे रवाना हो जाएगी।

अन्य युरोपीयनों की तरह नार्वे निवासी भी समय के बड़े पाबंद हैं। सवा आठ बजे की बस ठीक सवा आठ बजे ही रवाना होगी — चाहे यात्री आएँ या न आएँ — उन्हें इससे कोई मतलब नहीं।

अपना हल्का-सा सामान उठाए मैं बस की दिशा में, जल्दी-जल्दी भाग रहा हूँ। मेरे आगे नीला सूट पहने, नीली पी-कैप लगाए बस-ड्राइवर चल रहा है। लंबे-लंबे कदम रखता हुआ। बस के निकट पहुँचते ही, वह अपनी कलाई पर बंधी घड़ी की ओर देखता है। अपनी जेब में से छोटा-सा कोई यंत्र बाहर निकालता है कि बस का अगला द्वार अपने आप खुल जाता है।

अरे, यह भी कमाल है!

बस पाँच-छह गज दूर है, और वहाँ उसके पास आते ही बस का दरवाजा अपने आप खुल गया है!

जब चाहे वह इस तरह बस का दरवाजा खोलता है और जब चाहे बंद कर देता है। चाबी का कहीं कोई सवाल नहीं!

ठीक आठ बजकर पंद्रह मिनट पर बस रवाना होती है।

साफ-सुथरी वातानुकूलित है यह बस।

ज्यों ही वह कुछ कदम आगे बढ़ती है, पिछली सीट पर बैठा कंडक्टर सभी यात्रियों का अभिवादन करता है। फिर विस्तार से आज का कार्यक्रम बतलाता है — कि बस किन-किन महत्वपूर्ण स्थलों से होकर गुजरेगी। शाम को किस जगह विश्राम करेंगे। क्या कार्यक्रम वहाँ का रहेगा।

हमारे साथ दुनिया के कई देशों के निवासी हैं — रूसी हैं। अमेरिकी हैं। पाकिस्तानी हैं। नेपाली हैं। अफ्रीकी हैं। ईरानी हैं। जर्मन हैं। जापानी हैं। कोरियाई हैं। इण्डोनेशियन हैं। और भी कई देशों के निवासी हैं।

सपाट सड़क पर बस उड़ती हुई भाग रही है, हवा से बातें करती हुई।

यद्यपि यह गर्मी का मौसम है, फिर भी सर्दी का अहसास हो रहा है। सुबह-सुबह थोड़ी बूँदा-बाँदी हुई थी न! इसलिए ठंड अपना असर दिखला रही है। ओस्लो से रवाना होते समय

कुछ कुहासा भी था, जिसने बाद में वर्षा का रूप धारण कर लिया था।

आसमान में अभी भी गंदे चीथड़े की तरह मटमैले बादल छितरे हुए हैं। कहीं-कहीं घने कुहरे के बीच सूरज की किरणें लुका-छिपी कर रही हैं।

हमारे देश के पर्वतीय क्षेत्रों में सीढ़ीनुमा खेत होते हैं। परन्तु यहाँ वैसे नहीं, ढलवाँ हैं। सपाट। शायद ट्रैक्टर चलाने की सुविधा के लिए।

ये ढलवाँ खेत। हरी-भरी धरती। ऐसा लग रहा है जैसे किसी पहाड़ी पर हरा कालीन बिछा दिया गया हो।

युक्लिप्टिस के झुरमुट। अलग-अलग मकान। रंगे। पुते। जैसे अभी-अभी तैयार हुए हों।

स्वच्छ सड़कें। सुंदर गाँव ! सुव्यवस्थित कस्बे। सब देखकर लगता है कि सरकार इनके रख-रखाव पर भी कम ध्यान नहीं देती ! ओस्लो की सड़कों के मुकाबले में यहाँ की सड़कें अच्छी लग रही हैं।

एक गाँव के निकट बस रुकती है।

हम बाहर निकलकर देखते हैं। इधर-उधर घूमते हैं। कोई घर ऐसा नहीं दीखता जहाँ टेलीविजन न हो। फ्रिज न हो। जो पूरी तरह वातानुकूलित न हो। जिसके आगे कोई कार न खड़ी हो। प्राय : हर घर में, ड्राइंगरूम का एक हिस्सा बंद खिड़की की तरह बाहर की ओर निकला रहता है, जिसमें कीमती सफेद पर्दे झूलते रहते हैं। उनके बीच में फूलों का एक गुलदस्ता सजा रहता है।

सड़क यदि चट्टानों में से होकर गुजरती है तो सड़क के साथ-साथ चट्टानों में बिजली के लैम्प सारी रात जलते रहते हैं ताकि ड्राइवर सावधानी बरत सकें और चट्टानों से गाड़ी न टकराने पाए।

वहाँ स्कूल के एक अध्यापक मिलते हैं। अधेड़ उम्र के हैं। टूटी-फूटी अंग्रेजी बोल लेते हैं।

उनसे बातें कर ही रहे थे कि सहसा वे बोल पड़ते हैं, "हमारे यहाँ आम जनता की भलाई के

लिए जो भी संभव प्रयास सरकार कर सकती है, करती है। आखिर यह सारी संपन्नता आम जनता के हित के लिए ही तो है न। फिर हमारे देश की जनता भी जागरूक है। अपने हितों के प्रति सचेत है। सरकार सारा पैसा केवल शहरों में ही नहीं खर्च करती। गाँवों, कस्बों का भी उसे पूरा-पूरा ध्यान रखना होता है। इनके अलावा एक और भी है, प्रमुख कारण,हमारे देश की आबादी बहुत कम है — केवल 55 लाख। इस कारण भी सरकार सबकी जरूरतों का पूरा-पूरा ध्यान रख पाती है।"

मुझे ख्याल आता है, जितनी आबादी संपूर्ण नार्वे देश की है उससे ड्योढ़ी तो केवल एक शहर दिल्ली की है। जितने अधिक लोग होंगे उनकी उचित व्यवस्था करना उतना ही कठिन होगा।

कहीं नीली-नीली झीलें दीखती हैं, साफ पानी की। कहीं फीयोर्ड हैं। सागर-तट पर खड़े स्टीमर। रंग-बिरंगी नावें। हर 15-20 मिनट की यात्रा के बाद नज़ारा बदल जाता है।

लगभग नब्बे किलो मीटर की दूरी हमने अब तक तय कर ली है।

अब हम आरस्को रस्ट्रेड कस्बे में हैं।

सड़क के किनारे बस रुक जाती है। झमाझम पानी बरस रहा है। पास ही समुद्र का किनारा है। चट्टानी धरती। वहाँ एकांत में एक अकेला मकान है। उसी दिशा में सब दौड़ने लगते हैं। पानी की बौछारों से अपने को बचाते हुए।

"विख्यात चित्रकार एडवर्ड मौंक यहाँ पूरे दस साल तक रहे थे।" हमें बतलाया जाता है।

हम उस घर की ओर श्रद्धा से देखते हैं।

दौड़ता हुआ घोड़ा।

चीखती हुई औरत।

घोड़े की अयाल पकड़े कोई चल रहा है।

मुझे ओस्लो में देखे मौंक के चित्र, एक-एक कर याद आने लगते हैं।

"यहाँ रह कर उन्होंने कई अमर कलाकृतियों की रचना की थी। रैलिंग के सहारे खड़ी चार लड़कियाँ सागर की ओर देख रही हैं। वह प्रसिद्ध पेंटिग यहीं की देन है।"

बस कंडक्टर बतलाता चला जा रहा है।

"यह कस्बा जैसा मौंक के समय था, जैसा उसने पेंट किया, अब भी लगभग वैसा ही है। कहीं कोई विशेष बदलाव आपको मिलेगा नहीं!" वह बहुत भावुक होकर कह रहा है।

ह्वेल संग्रहालय

ये जो पानी की बूँदें हैं न! बहुत बुरी हैं। देखो, थमने का नाम ही नहीं लेतीं!

हम बुरी तरह भीग गए हैं। सर्दी भी अब कुछ अधिक लगने लगी है।

हम फिर यात्रा पर निकल पड़ते हैं।

फिर छोटे-छोटे कस्बे। छोटे-छोटे गाँव। छोटे-छोटे चरागाह। छोटे-छोटे फार्म। छितरे हुए सुंदर घर। रहने को जी करता है।

दूर एक झील दीख रही है।

चारों ओर देवदार के पेड़। उसी से लगा एक मकान, जिसके चारों ओर पीली, मटमैली चादरें-सी बिछी हैं। लगता है कोई फसल पक रही है।

थोड़ी-सी दूरी और पार करने पर एक और फार्म है जिसके बाईं ओर चरागाह जैसा कुछ। बहुत-सी गाएँ चर रही हैं।

नार्वे डेनमार्क की तरह पशुपालन के लिए उतना प्रख्यात नहीं, फिर भी यहाँ डेरी-फार्म का धंधा कम उन्नत नहीं।

यहाँ की गाएँ दुबली-पतली मरियल नहीं, बल्कि हमारे देश की भैंसों से भी अधिक मोटी हैं।

यह देखकर आश्चर्य होता है कि नार्वे में अधिकांश लोग कच्चा, बोतल में बंद दूध पानी की तरह पी जाते हैं। हमारे यहाँ की तरह दूध गरम करके पीने की परंपरा नहीं है। यंत्रों की सहायता से दूध जीवाणु रहित बनाया जाता है, जिसे "पाश्चराइज्ड मिल्क" कहते हैं।

इनके रख रखाव की व्यवस्था भी कम आधुनिकतम नहीं। इतनी स्वच्छता दीखती है कि लगता नहीं, यह पशुओं का कोई बाड़ा है।

लगभग चालीस किलोमीटर की दूरी अभी और तय की तो एक और कस्बा सामने खड़ा दीखता है। बीच बाज़ार में ड्राइवर गाड़ी खड़ी कर देता है।

अभी कुछ ही कदम हम आगे बढ़ पाते हैं कि एक शानदार इमारत सामने दिखलाई देती है। लिखा है — "ह्वेल हंटिंग म्यूजियम" !

सभी यात्री द्वार के पास खड़े हो जाते हैं।

ह्वेल दुनिया की सबसे बड़ी मछली है। इतनी बड़ी, इतनी शक्तिशाली कि मौका पड़ने पर छोटे-छोटे जहाजों तक को उलटने की क्षमता रखती है।

ध्रुव प्रदेशों में ह्वेल मछली बड़ी आसानी से पाई जाती है। नार्वे भी सुदूर उत्तरी ध्रुव तक फैला है न। ध्रुव-प्रदेश के अंतिम बिंदु के अत्यधिक निकट। इसलिए यहाँ के सागरों में प्राचीन काल से ही ह्वेल का शिकार किया जाता रहा है।

ह्वेल का शिकार करना कोई आसान काम तो नहीं कि काँटा पानी में डाला और खींच लिया और मछली पकड़ में आ गई।

सचमुच यह बड़ा जोखिम भरा काम है। किसी क्षण कुछ भी हो सकता है। पुराने जमाने में आज की जैसी सुविधाएँ कहाँ थीं ? अत : इसे पकड़ने के लिए बड़े कौशल की आवश्यकता होती थी। विशेष श्रम की। विशेष साहस की। विशेष शक्ति की।

यहाँ वे सारे हथियार सजाकर रखे हुए हैं,जिनसे सैकड़ों, हजारों साल पहले ह्वेल का शिकार किया करते थे।

आकार में पहाड़-जैसी होती है न ह्वेल। इसलिए मारे जाने पर इसका मांस भी टनों के हिसाब से प्राप्त होता है।

आर्थिक दृष्टि से बड़ा लाभकारी रहता है। बर्फीला प्रदेश है। महीनों तक मांस खराब नहीं होता। बर्फ में ढककर, जब तक चाहें सुरक्षित रखा जा सकता है।

मुझे याद आता है—

परसों रात को भोजन के समय जो मांस परोसा गया था, वह ह्वेल का ही था। बड़े ही कौतूहल के साथ विदेशी पर्यटक खा रहे थे। मैंने भी जब पहला टुकड़ा हाथ में उठाया तो बड़ा

रोमांच हो आया था। ह्वेल का मांस करीब-करीब वैसा ही लग रहा था जैसा बचपन में जंगली हरिण या बारहसिंघे का हुआ करता था।

लोहे के वे मोटे-मोटे बरछीनुमा तीर भी यहाँ सुरक्षित हैं जिन्हें दूर से फेंक कर ह्वेल को घायल किया जाता था। इस तरह बार-बार आक्रमण करके उसे बुरी तरह लहूलुहान कर दिया जाता था। घायल करने या थकाने के बाद उन्हें अपना अंतिम लक्ष्य बनाना आसान रहता था। कभी-कभी तो दो-तीन जहाज मिलकर ह्वेल को पहले घेरा करते थे। फिर उस पर घातक, नुकीले हथियार बरसाए जाते थे।

पहले किसी युग में यहाँ के निवासी केवल अपने भोजन के लिए ह्वेल का शिकार किया करते थे। किन्तु जब से इसका व्यावसायिक रूप उभरा, इनके प्रति आदमियों की निर्ममता और भी अधिक बढ़ गई है। इस अमानवीय कृत्य का परिणाम यह है कि आज ह्वेल मछली की संख्या दुनिया में बहुत कम रह गई है।

नाविकों का शहर

आठ घंटे की यात्रा तय कर चुके हैं। शाम के लगभग चार बज रहे हैं और हम फ्रागेरा को छू रहे हैं।

समुद्र किनारे बसा यह एक सुंदर स्थल है। रंग-बिरंगी यंत्रचालित नौकाएं फूल की टूटी पंखुड़ियों की तरह समुद्र की सतह पर फैली हैं। किनारे पर रस्सी से बंधी छोटी-छोटी, सुंदर, सुगढ़ मोटर-बोटें भी तितलियों की तरह पानी पर बैठी हैं। हरा-भरा प्रदेश। छोटे-छोटे हरे द्वीप दूर से ही अपनी ओर आकर्षित कर रहे हैं। समुद्र का जल हरा नीला रंग लिए है। पारदर्शी। मोती-सा स्वच्छ। सूर्य की किरणों में हीरे के टुकड़ों की तरह जगमगाता हुआ। हम जिस होटल में ठहरे हैं वह बहुत बड़ा नहीं, परन्तु आधुनिक सुविधाओं से संपन्न हैं। रेल के बर्थ जैसे हैं। एक के ऊपर एक। एक बिस्तरा नीचे की बर्थ पर। दूसरा उसके ऊपर। ऐसे कई बर्थ हैं। एक कमरे में 10-15 आदमी आसानी से समा सकते हैं।

छह बजे शाम को ही रात का भोजन कर लेते हैं। अत: भोजन से मुक्त होकर आज

केवल आस-पास का क्षेत्र देखने का कार्यक्रम बनता है। "जो जहाँ चाहे, वहाँ घूमें" के अनुसार।

यह क्षेत्र पर्वतीय है। कठोर काली-काली चट्टानों वाला। हम भी अपने-अपने परिचित मित्रों के साथ यों ही निकल पड़ते हैं। किधर ? कहाँ ? किसी को पता नहीं।

पहले कुछ देर सागर के किनारे-किनारे। वह सामने की साफ-सुथरी सड़क जंगल की ओर निकल गई है न। थोड़ी सी चढ़ाई तो है देखें ऊपर क्या है ? एक-दो मकान भी तो दीख रहे हैं, सड़क के किनारे।

कुछ नया देखने की इच्छा हमें सीधी चढ़ाई चढ़ने के लिए विवश कर रही है। सामने वाले मकान के आगे "किचन गार्डन" है। दो-तीन नार्वेजियन खुरपी, कुदाली लिए काम पर जुटे हैं। वे हमारी ओर तनिक आश्चर्य से देखते हैं। हमसे कुछ पूछते हैं, किंतु भाषा समझ में न आ पाने के कारण हम समझ नहीं पाते।

जब हम बोलने लगते हैं तो वे गूँगों की तरह देखने लगते हैं। अब चुप रहने की बारी उनकी है।

मैं देख रहा हूँ — घर से लगा एक नन्हा-सा घर है— बच्चे का घर। इस बाल-गृह का अपना एक अलग स्वीमिंग पूल है। उसके खेलने का, खाने का भी अलग स्थान। कोठरी के भीतर एक छोटा-सा पलंग भी पड़ा है, बच्चे को नींद लगे तो पाँव पसारकर निश्चिंत भाव से सो जाए। आखिर घर अपना है। क्या चिंता !

परिवार की दुनिया से अलग यह एक निराला ही संसार है। शिशु-संसार।

हम कुछ और आगे बढ़ते हैं।

एक घर की खिड़की खुली है। एक वृद्ध सज्जन वहाँ से झाँक रहे हैं।

"किस देश से आए हैं ?" टूटी-फूटी अंग्रेजी में पूछते हैं।

"भारत से ?"

वह उसी तरह जिज्ञासा से देखते रहते हैं।

"भारत कहाँ है ? आप जानते हैं ?"

"नहीं, मुझे नहीं मालूम...।"

"इजिप्ट के बारे में कुछ सुना है?"

"नहीं।"

"जैम्बिया.. ?"

"ना।"

"हम सब वहीं से आए हैं...।"

वे विवश भाव से हम अजनबियों की ओर देख रहे हैं। देखते जा रहे हैं।

कुछ और चढ़ाई चढ़ने के पश्चात हम आम रास्ता छोड़ देते हैं और बाईं ओर के कच्चे मार्ग पर निकल पड़ते हैं। एक कौतूहल का भाव लिए — देखें, आगे कैसा नजारा है?

थोड़ी देर के बाद ही सचमुच हमें एक नया नजारा मिलता है। एक नया लोक, एक नया वातावरण। सब कुछ एक मिनट में बदल जाता है। जैसे पर्दा हट गया हो।

दूर, बहुत-बहुत दूर एक घाटी-सी। वहाँ मीलों लंबी एक झील, जिसके ओर-छोर का ही पता नहीं चल पाता। उसके बीच में एक हरा-भरा छोटा-सा द्वीप, जहाँ देवदार के हरे-हरे वृक्षों के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। द्वीप के किनारे पर कुछ रंगीन नावें बंधी हैं। झील में जंगल की लकड़ी के लट्ठे एक दूसरे से जुड़े तैर रहे हैं — बेड़े की शक्ल में। ऐसा लगता है जैसे बहुत बड़ी चटाइयाँ जल की सतह पर तैर रही हैं।

एक विशाल पत्थर पर बैठकर हम देर तक यह दृश्य देखते रहते हैं।

जिधर झांको, उधर ही एक नया संसार!

सुबह का कार्यक्रम व्यस्त है।

इसलिए रात को ही फ़ागेरा शहर देखने की योजना बनाते हैं। हम अपने समय के मालिक हैं। जहाँ चाहें, जाएँ।

फिर मन में थोड़ा लालच भी तो रहता है न! जीवन में दुबारा शायद ही कभी यह दुनिया देखने को मिले। इसलिए जितना अधिक से अधिक संभव हो, देख लेना चाहिए।

यद्यपि यहाँ भी दुकानें छह बजे शाम को ही बंद हो जाती हैं, फिर भी बाजार में चहल-पहल-सी लग रही है। नाविकों का शहर है न! उनके लिए क्या दिन? क्या रात?

हम सागर के किनारे-किनारे अब एकदम दूसरी दिशा को जा रहे हैं — पश्चिम की ओर।

कठोर चट्टानें काटकर सड़कें बनाई गई हैं। संकरी सड़कें हैं। इस समय रात के ग्यारह बज रहे हैं, परन्तु एक तरह का धुंधला-धुंधला प्रकाश सर्वत्र व्याप्त है।

यातायात इस समय कुछ कम है। किन्तु इक्की-दुक्की जो भी कारें आती हैं, वे इतनी तेज भागती हैं कि लगता है कुचल कर ही दम लेंगी। इस तंग चट्टानी सड़क पर घुमावदार मोड़ों से होते हुए इतनी तेज गति से गाड़ी चलाना खतरे से खाली नहीं है। किन्तु लोग हैं कि बेधड़क सड़क चीरते हुए आँखें मूँदे सर्रर से निकल भागते हैं। सामने से फिसलती हुई ज्यों ही कोई गाड़ी आती है, हमारे सहयात्री सड़क के किनारे की चट्टान से चिपक जाते हैं।

शहर में बत्तियाँ जल रही हैं। अधिकांश दुकानें सड़क के किनारे-किनारे बनी हैं, इसलिए शहर की लंबाई का पता नहीं चल पाता। चलते-चलते पाँव थक जाते हैं। हम देखते हैं — कुछ रेस्तराँ खुले हैं। कहीं-कहीं गाने-बजाने की भी आवाज आ रही है। इस सोए शहर को देख कर हम लौटने लगते हैं।

रात का एक बज रहा है, पर वैसा ही धुंधला प्रकाश है।

□□□

6

[illegible]

नाश्ते के बाद सुबह सब बोट की ओर बढ़ते हैं। आज का कार्यक्रम है फ्रागेरा के आस-पास के द्वीपों को देखना। उस अंतिम द्वीप तक जाना है, जहाँ प्रकाश स्तंभ है।

जिसे जहाँ जगह मिलती है, वह वहाँ बैठ जाता है। कुछ लोग किनारे पर रैलिंग के सहारे खड़े होकर लहरों का नृत्य देखने का आनंद उठाते हैं।

प्रकृति की लीला अनंत है।

सब अपने में मस्त हैं।

सब के चेहरों पर कौतूहल है। उल्लास है। कुछ नया देखने की ललक है।

एक दिवा-स्वप्न जैसा लग रहा है यह सब!

बोट में चालीस-पचास व्यक्ति आसानी से आ सकते हैं। यंत्र से चल रही है बोट। घूँ-घूँ करती हुई दक्षिण-पूर्व दिशा की ओर भागी चली जा रही है, जैसे किसी दौड़ में शामिल हो रही हो।

कई ऐसी ही नावें विपरीत दिशा में चल रही हैं। जब वे हमारी बगल से गुजरती हैं तो दोनों ओर के यात्री हाथ हिलाकर यों ही एक दूसरे का अभिवादन करते हैं — हँसते किलकते हुए।

बोट पर बैठा एक व्यक्ति अंग्रेजी में यात्रियों को इन द्वीपों के विषय में विस्तार से बतला रहा है—

"जाड़ों के दिनों में यहाँ इतनी बर्फ पड़ती है कि सागर का यह सारा पानी, जिस पर अभी बोट चल रही है, जम कर पत्थर बन जाता है। तब नावें नहीं चल पातीं। न स्टीमर या जहाज ही। इसलिए इन द्वीपों में भोजन आदि आवश्यक वस्तुएँ पहुँचाने की व्यवस्था हेलीकोप्टरों की सहायता से होती है। डाक भी उसी से आती-जाती है।"

कुछ द्वीप तो सचमुच बहुत छोटे-छोटे हैं — बित्ते भर के। एक किनारे से दौड़ो तो दूसरे किनारे तक पहुँच जाओ। उनमें किसी-किसी में कुछ वृक्ष उगे हैं, शेष वीरान हैं।

चित्र 9 — भेड़ों के साथ

कहीं-कहीं द्वीपों में लाल, पीले चटख रंगों से रंगे मकान हैं — समुद्र के तट पर। प्राय : हर घर के आगे खंभे पर नार्वे का झंडा लहराता दीखता है। मुझे लगता है — ये रंगीन मकान तथा ये रंगीन झंडे इन एकांत में बसे द्वीपों में सिगनल के कार्य करते होंगे, ताकि आनेवाले को दूर से ही देखने पर उन के अस्तित्व का पता चल सके।

अब हम दो नन्हें द्वीपों के बीच की संकरी-सी नहर से गुज़र रहे हैं। यह नहर कोई अलग से नहीं, समुद्र का ही एक हिस्सा है। मार्ग इतना तंग है कि एक वक्त में एक ही नाव आ-जा सकती है।

दूर किसी चट्टान में बजरी का जैसा कोई कारखाना दीख रहा है। पत्थर पीसने की एक मशीन चल रही है।

बतलाया जाता है कि सामने जो वह द्वीप दीख रहा है, हमें वहीं पहुँचना है।

ज्यों-ज्यों किनारा निकट आता चला रहा है, त्यों-त्यों उत्सुकता भी बढ़ती चली जा रही है।

डीजल-बोट किनारे पर आ लगती है।

एक-एक कर सब उतरते हैं।

दोपहर का भोजन आज यहीं करना है हमें।

द्वीप की धरती पर पाँव रखते ही, अनेक सीगल पक्षी हमारे स्वागत में झुण्ड बनाकर मंडराने लगते हैं। किनारे पर हरी दूब का मैदान है, वहाँ कोई मेला लग रहा है। कई सैलानी समीप ही बने स्वीमिंग पूल में तैर रहे हैं। कई दुकान के आगे खड़े आइस्क्रीम का आनंद उठा रहे हैं। बच्चे आस-पास किलक रहे हैं। तरह-तरह के बाजे बजाते हुए गा रहे हैं।

हथेली की तरह हल्की-सी चढ़ाई है। हम उस रास्ते में आगे बढ़ रहे हैं जो द्वीप के दूसरे किनारे तक ले जाता है। यों दूसरा किनारा दूर ही कितना है — लपककर पहुँचा जा सकता है।

अभी दस-बारह मिनट की दूरी ही तय कर पाए हैं कि किनारा दीखने लगता है। केवल आठ किलोमीटर के घेरे में फैला है यह द्वीप। बहुत हरियाली है चारों ओर। आबादी भी अधिक नहीं। केवल कुछ घर दीख रहे हैं, एक छोटी सी बस्ती।

यहाँ पर बहुत सारे पत्थर हैं। वैसे ही गोल-गोल चिकने पत्थर जैसे हमारी यहाँ पहाड़ी नदियों के किनारे पर पाए जाते हैं। हमें बतलाया जाता है कि हिम-युग में बड़े-बड़े ग्लेशियरों से बहकर ये चिकने पत्थर यहाँ तक आए होंगे।

यहीं पर एक ऊँचे-से टीले पर है — प्रकाश स्तंभ जो रात्रि के समय जहाजों को रास्ता बतलाता है।

इन्हीं पत्थरों पर बैठकर हम दोपहर के भोजन का आनंद उठाते हैं। हम नार्वे के अंतिम छोर पर बैठे हैं। ओस्लो आने-जाने वाले जहाज यहीं से गुजरते हैं। जर्मनी, हालैंड, फ्रांस, इंग्लैंड आदि की दिशाओं में जाते हैं।

हम लोग कुछ क्षणों के विश्राम के बाद प्रकाश स्तंभ देखने जाते हैं। कितना रोमांचक होता यह सब देखना। गोल-गोल सीढ़ियाँ — जैसी कुतुब मीनार में चढ़ते समय दीखती हैं। एक-एक सीढ़ी को गोलाकार मार्ग से पार करते हुए अंत में हम पहुँच जाते हैं — स्तंभ के ऊपर। एकदम चोटी पर।

वहाँ से सारा द्वीप एक थाली जैसा दीखता है।

देर तक हम जहाजों को, सीगल पक्षियों को, घरों के बाहर काम करते लोगों को देखते रहते हैं।

नीचे उतरकर हम फिर उसी मैदान की ओर बढ़ते हैं, जहाँ मेला लगा था।

अभी भी वहाँ वैसी ही भीड़ है। आज इस द्वीप के निवासियों की दौड़ है। बच्चे, बूढ़े, औरत, मरद सब इस द्वीप की परिक्रमादौड़ में शामिल हो रहे हैं। जो विदेशी सैलानी यहाँ उपस्थित हैं, उन्हें भी आमंत्रित कर रहे हैं। हममें से बहुत से लोग दौड़ में शामिल हो जाते हैं।

दौड़ प्रतियोगिता में जीतने वालों का भव्य स्वागत किया जा रहा है। यहाँ के निवासियों की एक संस्था है। उसकी ओर से जीतने वालों को प्रमाण-पत्र दिए जा रहे हैं।

हमारे लौटने का समय हो गया है।

बोट पर सब बैठने लगते हैं।

घूँ-घूँ करती बोट उसी रास्ते को तय करने लगती है, जिस से अभी हम यहाँ आए थे।

आसमान में कहीं-कहीं सुरमई बादल हैं। तेज़ ठंडी हवा बह रही है। इसलिए एकाएक सर्दी बढ़ जाती है।

सीगल हमारे साथ-साथ उड़ रहे हैं।

नारंगी रंग की एक विशाल क्रेन आसमान में अटकी-सी दीख रही है। प्राय : सभी घरों की छतें गेरुए रंग से रंगी हैं।

झंडे फहरा रहे हैं।

हवा में तैरते पीले बैलून !

लाल-लाल नाव पर प्लास्टिक के लाल कपड़े पहने दो बच्चे स्वयं नाव चला कर किनारे तक ले आए हैं। कितने साहसी बच्चे हैं ! सागर यद्यपि यहाँ का शांत है, फिर भी सागर-सागर ही होता है न !

शाम। पाँच बजे हैं। हम अनेक द्वीपों के दर्शन कर क्रागेरा लौट आए हैं और फिर क्रागेरा से विदा होते हैं — टाटा ! कहते हुए।

अब सीधे ओस्लो पहुँचना है। रास्ते में कहीं रुकने का सवाल नहीं।

सीगल नहीं दीख रहे हैं। हाँ, दूर जंगल में कुछ बच्चे तितलियाँ पकड़ रहे हैं। यहाँ के जंगलों में जंगली स्ट्राबेरी भी खूब मिलती हैं। लार्विक बंदरगाह के पास हम देखते हैं, कुछ बच्चे बड़ी तन्मयता से इकट्ठा कर रहे हैं। मन तो हमारा भी बहुत होता है, मीठी-मीठी खट्टी-खट्टी स्ट्राबेरी खाने का, परंतु वह सौभाग्य कहाँ !

हमारी बस का गाइड स्ट्रोग कोल्म बतलाता है, "ओस्लो में साँग सवान झील के किनारे जंगली स्ट्राबेरी की अनगिनत झाड़ियाँ हैं। इन दिनों वहाँ खूब पक रही है। आपको समय मिले तो अवश्य जाइएगा।"

मुझे लगता नहीं कि अब वहाँ जाने का अवसर मिल पाएगा।

एक के बाद एक झील।

एक के बाद एक जंगल।

एक के बाद एक फीयोर्ड।

इन्हें देख कर कभी-कभी लगता है — नार्वे में सब जगह जल ही जल है। जंगल ही

जंगल है। मिट्टी का रंग तो हमने देखा ही नहीं।

मैं यही बात पास बैठे नार्वे निवासी सहयात्री से कहता हूं तो वह हँस पड़ता है, "आप बिलकुल ठीक कह रहे हैं। अन्य विदेशी भी नार्वे के बारे में ऐसी ही धारणा रखते हैं। कुल जमीन के सत्तर प्रतिशत भाग में घने वन हैं। सुंदर पहाड़ हैं, मोती जैसी साफ झीलें और बर्फीले ग्लेशियर हैं।

कुछ रुक कर वह आगे कहता है, "आपको शायद पता न हो, हमारे देश में 1700 से अधिक ग्लेशियर हैं। देश का एक बहुत बड़ा भाग हमेशा बर्फ से ढका रहता है। बहुत कम लोग जानते हैं कि हमारा देश दो भागों में बँटा है। एक मुख्यभूमि है — जिसमें हम रह रहे हैं। दूसरा नार्वे से सैकड़ों मील उत्तर में एक विशाल द्वीप है — जहाँ हमेशा बर्फ ढकी रहती है, जिसका क्षेत्रफल लगभग 62 हजार वर्ग किलोमीटर है। इसे सालवर्ड द्वीप कहते हैं। यह उत्तरी ध्रुव के ठीक बीच में है।"

"यानी दुनिया के सिर पर ?"

"नहीं, नहीं। कहिए कि दुनिया की चाँद पर है।" वे हँस पड़ते हैं।

अपनी बगल में रखे चमड़े के झोले में से वह नार्वे का नक्शा निकालता है। उसे सामने फैलाता है, "देखिए यह रहा नार्वे... और यह रहा सालवर्ड द्वीप। यह सारा द्वीप सैकड़ों मीटर मोटी बर्फ की परतों से हमेशा ढका रहता है।"

मैं नार्वे के नक्शे की ओर कुछ और गौर से देखता हूं। "इसके अलावा शेष नार्वे का क्षेत्रफल कितना होगा ?"

"यही कोई तीन लाख सत्तासी हजार वर्ग किलोमीटर।"

कोई नार्वेजियन गाना बज रहा है — ट्रांजिस्टर पर। बोल समझ में नहीं आते, परंतु भाव बहुत मधुर लगते हैं। धुन भी कम मधुर नहीं। नार्वेजियन लोगों के चेहरों से लग रहा है कि वे संगीत का पूरा-पूरा आनंद उठा रहे हैं।

साँझ का सूरज.... नहीं, नहीं रात का सूरज ढल रहा है। ओस्लो की दूरी निरंतर कम होती चली जा रही है।

□ □ □

7

सफेद बर्फ की हरी फसल

ओस्लो आना हो तो छतरी और गमबूट अवश्य लाएं, किंतु उन्हें रेस्तरां में भूलें नहीं।

एक स्थान पर लिखा है।

गर्मी शुरू हो गई है,परन्तु बरसात भी बीच-बीच में चलती रहती है। लेकिन यह हमारे यहां की जैसी बरसात नहीं कि पानी बरस रहा है तो लगातार बरसता चला जा रहा है।

हल्की बूँदा-बाँदी। और सूरज चमकने लगता है।

परन्तु इत्ती सी बारिश से ही ठण्ड बहुत बढ़ जाती है।

ओस्लो के आसपास अनेक छोटे-छोटे फार्म हैं।

ये जो पीले-पीले खेत दीख रहे हैं न, ये गेहूं के हैं। फसल इन दिनों पक रही है,इसलिए पीला सोना सर्वत्र बिखरा दिखलाई दे रहा है।

दाहिने ढलान पर जौ बो रखा है।

और ये जो हर-हरे खेत हैं, ये आलू के हैं।

''नार्वे निवासी आलू खूब खाते हैं। अपनी आवश्यकता के लिए देश में ही पैदा कर लेते

हैं, इसलिए दूसरे देशों से आयात नहीं करते।'' आलू के खेत में काम कर रहे किसान बतलाते हैं।

नार्वे ध्रुव-प्रदेश से लगा है। इसलिए बर्फ की मोटी-मोटी चादरें अनेक भागों में वर्षभर बिछी रहती हैं। अधिकांश भाग पर्वतीय होने के कारण कुछ उगा पाना वैसे भी कठिन होता है।

छह महीने का दिन! छह महीने की रात! लगभग सारा प्रदेश सालभर तक हिम के प्रभाव में रहता है। इतनी ठिठुरती ठंड में पौधों का बच पाना कठिन ही नहीं, असंभव भी है।

ऐसी स्थिति में केवल कुछ ही महीने होते हैं, जब धरती कहीं-कहीं हरी दीखती है। कहीं-कहीं रंग-बिरंगे फूल-पौधे झाँकते हैं। लोगों की आँखें इन्हें देखने के लिए तरस उठती हैं।

इन विकट स्थितियों के कारण यहाँ खेती कर पाना आसान नहीं। फिर भी आश्चर्य यह देख कर होता है कि यहाँ के लोगों ने कभी भी हार स्वीकार नहीं की। प्रकृति से इनका सदैव संघर्ष चलता रहता है। आदिम युग में ये लोग जहाँ मछलियों तथा अन्य पशुओं के शिकार पर निर्भर रहते थे, वहाँ खेती के प्रति भी झुकाव रहा। बहुत-से लोगों के लिए यही आजीविका का साधन रही। आज भी नार्वे की कुल आबादी का सात प्रतिशत खेती पर ही निर्भर है। जबकि मछली पकड़ने पर मात्र एक प्रतिशत और लगभग इतना ही वन-उद्योगों पर।

सैकड़ों सालों के श्रम के पश्चात भी अब तक केवल तीन प्रतिशत क्षेत्र में ही खेती होती है।

ज्यों-ज्यों हम उत्तर की ओर जाते है, खेती की संभावनाएँ कम होती चली जाती हैं। हाँ, चरागाह अवश्य अधिक हैं। नार्वे के लगभग चालीस प्रतिशत क्षेत्र में ये हरी-भरी मखमली दरियाँ बिछी रहती हैं। उत्तरी भाग में यह प्रतिशत और भी बढ़ जाता है।

''आप लोगों का गुजारा खेती से हो जाता है?'' मेरे इस प्रश्न पर वह अधेड़ किसान कुछ गंभरता से सोचता है। फिर सिर हिलाता है, ''पूरा गुजारा तो संभव नहीं, हाँ कुछ-कुछ हो जाता है।''

"तो पूरे गुजारे के लिए आप क्या करते हैं ?"

"कुछ लोग भेड़-बकरियाँ पालते हैं। कुछ मुर्गियाँ। कुछ डेरी का सहारा लेते हैं।"

"आप क्या करते हैं ?"

वह हँस पड़ता है, "डेरी का काम। मैंने कुछ गाएँ पाल रखी हैं, उनसे अच्छी आमदनी हो जाती है।"

हम उसका घर देखने की इच्छा प्रकट करते हैं।

वह बिना हिचकिचाहट के अपना घर दिखलाता है। साफ-सुथरा घर। घर में टेलीविजन है। फ्रिज है। बाहर छोटा-सा ट्रेक्टर खड़ा है। पशुओं के रहने की जगह भी पास है एक अलग मकान।

वह बतलाता है, दूध मशीन से निकालते हैं।

लगता है, पशुओं के रख-रखाव पर यहाँ विशेष ध्यान दिया जाता है। कहीं नाममात्र को भी गंदगी नहीं।

गाएँ घर के पिछवाड़े मैदान में चर रही हैं। बिना सींगोंवाली, स्वस्थ गाएँ।

"फसल बेचने की क्या व्यवस्था है ?"

"यह कोई कठिन काम नहीं। हमें अपनी फसल का पूरा-पूरा मोल मिलता है।" वह उत्तर देता है।

"कितने बेटे हैं ?"

"दो।"

"क्या करते हैं ?"

"एक फाल्के स्कूल में पढ़ रहा है। दूसरा उससे बड़ा मछली उद्योग में है। पहले बूदो में था। अब हास्टा में है।"

आस-पास घूम-फिर कर हम लौटने लगते हैं।

सचमुच यहाँ के किसान बहुत सम्पन्न हैं। घर भी आधुनिक हैं। जीवन स्तर भी ऊँचा।

लौटते समय मुझे ख्याल आता है—

हमारे देश के किसान भले ही कितने गरीब हों, तम्बाकू के लिए अवश्य पूछते हैं। पानी

के लिए अवश्य आग्रह करते हैं, परंतु पश्चिमी सभ्यता कुछ और ही लगती है। हरेक के अपने-अपने पूर्व निर्धारित कार्यक्रम होते हैं। वे हर किसी की मेहमाननवाजी में विश्वास नहीं रखते।

दूसरे दिन नार्वेजियन कालेज ऑफ एग्रीकल्चर जाते हैं।

खेती के आधुनिकतम तरीकों के बारे में विद्यार्थियों को यहाँ प्रशिक्षण दिया जाता है।

एक कृषि अध्यापक से मिलते हैं। बड़े मिलनसार हैं। पूरा कालेज दिखलाते हैं। क्यारियों और खेतों में भी ले जाते हैं, जहाँ नए-नए किस्म के बीज उगाए जा रहे हैं।

रासायनिक खादों के उपयोग से उपज कितनी अधिक बढ़ी है? कौन-कौन से उन्नत बीज तैयार किए हैं? नए-नए औजारों के निर्माण के क्षेत्र में कितनी सफलता मिली है — वे बतलाते हैं।

गेहूँ के उत्पादन पर बातें चलती हैं, जो नार्वे की सबसे प्रमुख फसल है।

"इतना सब करने के बावजूद कुल आवश्यकता का केवल सात प्रतिशत गेहूँ ही हम उगा पाते हैं। शेष...।"

"शेष क्या आयात करते हैं?"

"जी हाँ, विदेशों से मँगाते हैं।"

"करीब कितना गेहूँ... ?"

"लगभग चार लाख टन।"

आगे वे विस्तार से बतलाते हैं, "हमारे देश में दक्षिणी भाग में खेती अधिक होती है। ओस्लो-फीयोर्ड के आस-पास नदियों के किनारे पर भी। म्योसा झील के निकट का क्षेत्र भी बड़ा उपजाऊ है। किन्तु वहाँ बड़े-बड़े फार्म नहीं, छोटे-छोटे ही हैं। मध्यम श्रेणी के भी कह सकते हैं उन्हें। लगभग पाँच लाख फार्म है नार्वे में। इनमें चार लाख ऐसे हैं जो चार एकड़ से बीस एकड़ के बीच में हैं। यों आर्थिक दृष्टि से बड़े फार्म अधिक उपयोगी माने जाते हैं।"

"सारी खेती यंत्रों की सहायता से होती हैं?"

"जी हाँ, सन् 1971 में हमारे यहाँ एक लाख बारह हजार ट्रेक्टर थे। अब दो लाख के नजदीक हैं।"

कुछ सोचते हुए वे आगे कहते हैं, "दूध के मामले में नार्वे आत्मनिर्भर है। मांस के लिए भी। किन्तु अन्न उत्पादन में मंजिल अभी दूर है। कृषि एक उद्योग बना रहे, इसके लिए किसानों को सरकारी अनुदान भी मिलता है। दूसरे विश्वयुद्ध के पश्चात यद्यपि कृषि के क्षेत्र में बहुत प्रगति हुई है,फिर भी अभी तक यह धंधा मुनाफे का नहीं है। कल-कारखानों में काम करने वाले मजदूरों की जितनी मजदूरी होती है, उतनी ही खेतों पर काम करने वाले मजदूरों को भी मिले — सरकार की ओर से प्रयास रहता है। इसके लिए सरकार आर्थिक सहायता भी देती है।"

"बाग-बगीचे भी यहाँ कहीं-कहीं दीखते हैं... ?"

"हाँ, फल-उद्योग को भी कम बढ़ावा नहीं मिल रहा है। फीयोर्ड क्षेत्रों में, जहाँ धूप अधिक चमकती है, बगीचे लगाए गए हैं। अधिक शीत के कारण पौधे अधिक नहीं बढ पाते हैं। हाँ, आपके यहाँ — गर्म प्रदेशों की बात कुछ और होती है...।"

हम शीशे के कमरों में उगती सब्जियाँ देखते हैं।

बाजारों में बिकने वाली अधिकतर सब्जियाँ तथा फल विदेशों से ही आयात किए हुए लगते हैं।

□□□

चित्र 10–दो साथी

8

टेलीमार्क की ओर

ओस्लो आए अब कुछ दिन बीत गए हैं। शुक्रवार की शाम मि० लार्सन आते हैं। कहते हैं, यहां बैठे-बैठ क्या कर रहे हैं ? दक्षिणी नार्वे में अभी बहुत कुछ है देखने के लिए। सच पूछिए तो अभी देखा ही क्या है आपने ? टेलीमार्क, बर्गन, सींयन, लिलि हामेर — और भी बहुत कुछ है।

"सोच तो मैं भी रहा था परन्तु व्यवस्था करनी है अभी...।" मैं अभी कह ही रहा था कि वे बोल पड़ते हैं, "देखिए टेलीमार्क के लिए कल व्यवस्था हो सकती है, यदि आप जाना चाहें तो!"

नेकी और पूछ-पूछ।

टेलीमार्क का नाम मैंने बहुत पहले सुना था। सुना था कि कभी यहाँ भारी पानी का कारखाना था। यह भी सुना था कि यहाँ के लोगों ने जर्मन नाजियों से जमकर मोर्चा लिया था — दूसरे विश्वयुद्ध में।

कार्यक्रम बनतां है कि अनेक विदेशी पर्यटकों का जो दल प्रात : रवाना हो रहा है, उसमें मैं भी चल दूँ। एक रात वहाँ रहकर दूसरे दिन वापस ओस्लो !

विचार तो बुरा नहीं है न!

यह क्षेत्र बहुत समृद्ध माना जाता है। खेती, पशुपालन के अलावा कल-कारखानों के लिए भी यह अग्रणी है। प्राचीन ऐतिहासिक महत्व की वस्तुएँ भी कम नहीं।

आस्लन होते हुए सुबह-सुबह चल पड़ते हैं। विभिन्न देशों के अनेक यात्री हैं। इस यात्रा में भी कंडक्टर गाइड की भूमिका निभा रहा है।

बस वातानुकूलित है। उस में मधुर संगीत की भी व्यवस्था है — यात्रियों के मनोरंजन के लिए। अंग्रेजी गानों के बाद अब नार्वेजियन गीत की मधुर ध्वनि सुनाई दे रही है। सहसा मुझे याद आता है, एक-दो कैसेट मेरे पास भी हैं — हिंदी गीतों के।

"क्या आप भारतीय संगीत का आनंद प्राप्त करना चाहेंगे?" मैं गाइड से कहता हूँ।

"हाँ, हाँ, क्यों नहीं...।"

मैं एक कैसेट उसे सौंप देता हूँ।

कुछ ही देर बाद सुनाई पड़ता है — अब आप टेलीमार्क के रास्ते पर हैं। हम चाहते हैं कि आप भारतीय संगीत के मिठास का भी रस लें।"

और गीत आरंभ होता है।

मुझे यह देखकर कहीं अत्यधिक अच्छा लगता है कि भाषा न समझते हुए भी बहुत से यात्री झूम रहे हैं। बस में अफ्रीका, एशिया, यूरोप, अमेरीका — अनेक देशों के सैलानी हैं।

सड़क के किनारे-किनारे खेत हैं।

काँच के,पालीथिन के पारदर्शी कमरों में सब्जियाँ उगाई जा रही हैं। कहीं टमाटर। कहीं भिंडी। कद्दू की जैसी बेलें भी दीख रही हैं। चौड़े पत्तों वाली हरी सब्जियाँ भी कम नहीं हैं।

भयंकर सर्दी तथा पाले से बचाने के लिए ऐसे घरों का निर्माण किया गया है। इन घरों में पौधों को संतुलित मात्रा में ताप दिया जाता है ताकि उनका विकास सही ढंग से होता रहे और बाहर के वातावरण के प्रभाव से भी वे मुक्त रहें।

सामने एक बोर्ड लगा है।

दो तख्तियाँ हैं।

एक पर तीर के साथ ओस्लो लिखा है, दूसरे पर हेगेदल।

दाहिनी ओर नन्हा-सा नगर है। लाल-लाल डिब्बों का जैसा शहर — बच्चों के खिलौनों जैसा।

गिरजाघर का ऊपरी लाल हिस्सा भी दूर से ही चमक रहा है।

यूक्लिप्टस के पेड़, देवदारों का झुरमुट। बड़े-बड़े ट्रक तीन-तीन ट्रेलर समेटे फर्राटे से निकल रहे हैं।

यह सारा प्रदेश काली चट्टानों का जैसा लग रहा है। सब तरफ चट्टानें ही चट्टानें।

काला जल। आलू के खेत। स्ट्राबेरी की क्यारियाँ। कारों के पीछे भी खूबसूरत ट्रेलर लगे हैं। छोटे-से डिब्बे के आकार का एक कमरा ! वातानुकूलित। इसमें फ्रिज है। चूल्हा है। रसोई का सारा सामान है। आवश्यकता पड़ने पर इस के भीतर पाँव पसारकर सोया भी जा सकता है।

सप्ताह के अंत में छुट्टी मनाने के लिए लोग बाल-बच्चों के साथ ऐसे ही ट्रेलर लेकर किसी भी सैरगाह में निकल पड़ते हैं। अधिकांश लोग समुद्र के किनारे या झील के तट पर मौज मनाते हैं। जहाँ मन हुआ, जब तक मन हुआ, रह लिए। न रात बिताने के लिए किराए के कमरे का झंझट, न खाने-पीने की आवश्यक वस्तुएँ खरीदने के लिए किसी दुकान की तलाश।

समुद्र के किनारे पर ऐसी गाड़ियों की लम्बी-लम्बी कतारें दीखती हैं। ये चलते-फिरते घर बड़े मनमोहक होते हैं तथा बहुत सुविधापूर्ण भी।

यहाँ के निवासी सप्ताह में पाँच दिन कठोर श्रम करते हैं। शेष छुट्टी के दो दिन सैर-सपाटे में बिताते हैं। अवकाश तभी सुखकर होता है जब उससे पहले श्रम भी निष्ठा के साथ किया जाता है। इसका महत्व पश्चिमी देशों के निवासी बड़ी खूबी से जानते हैं।

पहाड़ के पेट में छेद है। एक बड़ी-सी टनल। उसमें से होकर हमारी बस गुजर रही है।

भीतर घना अंधियारा नहीं, रौशनी की चकाचौंध है।

लो, लिएड कस्बा आ गया है!

इसके पास से गुजरती बस से कितना मोहक दृश्य दीखता है!

हरे पीले खेत।

बिखरे-बिखरे घर।

मखमली ढलान।

सिंचाई के लिए सर्वत्र फव्वारे लगे हैं, जिन्हें ''स्प्रिंकल'' कहते हैं।

चौड़ी सड़क पर चुंगी वसूल करने के लिए अनेक बूथ बने हैं — बीचोंबीच! पाँच क्रोनर चुकाने के बाद ही गाड़ी का चल पाना संभव है।

यहाँ मार्ग के दोनों ओर बिजली के खम्भे हैं। सभी प्राय: लकड़ी के बने हैं।

कस्बा है यह। परन्तु रख-रखाव की दृष्टि से शहरों से कई गुना अधिक अच्छा है।

बाईं ओर सागर लहरें ले रहा है।

पास ही कई कारखाने हैं।

चिमनियाँ धुआँ उगल रही हैं...।

घोड़ों का फार्म

''यहाँ कपड़े ही मैले नहीं होते।'' पास बैठे एक अफ्रीकी सहयात्री कहते हैं ''न यहाँ पसीना आता है। न यहाँ धूल है। न यहाँ धुआँ है। जमीन बहुत कम दीखती है। या तो पेड़ हैं, या घास, या पानी, या बर्फ।''

''ठण्डे प्रदेशों में ऐसा ही होता है, '' मैं कहता हूँ।

''मैंने भारत का हिमालय क्षेत्र देखा है तथा नेपाल भी। परन्तु वह भी ठण्डा प्रदेश ही माना जाएगा। परन्तु वहाँ तो ऐसा नहीं है। वृक्ष इतने अधिक कट गए हैं कि पहाड़ एकदम नंगे दीखते हैं...।''

वह सज्जन भारत भी आए हैं, यह जानकर तनिक आश्चर्य होता है। मैं जिज्ञासा से पूछता हूँ, ''वहाँ कैसे जाना हुआ ?''

''राष्ट्रसंघ के एक प्रोजेक्ट में काम कर रहा था, जो पर्यावरण से संबंधित था...।''

मैं खिड़की से बाहर देखने लगता हूँ सहसा ! पक्षियों का कलरव मुझे बहुत अच्छा लग रहा है। मैं उन चिड़ियों को भी देखना चाहता हूँ जो इतना अच्छा गा लेती हैं, वे स्वयं कितनी सुंदर होंगी।

''अब हम ड्रमन शहर में प्रवेश कर रहे हैं।'' माइक पर गाइड की आवाज है। यह नार्वे का छठा बड़ा शहर है। सोलहवीं शताब्दी में बसा था। कागज बनानेवाला भी एक कारखाना है यहाँ।''

ड्रमन समुद्रतट पर बसा है। यह नार्वे के महत्वपूर्ण बंदरगाहों में गिना जाता है। इस बंदरगाह में सबसे अधिक संख्या में विदेशों से आयातित कारें उतारी जाती हैं।

नार्वे हरियाली का देश है। बर्फ का देश। पानी का देश है। शायद यही कारण है कि यहाँ की कारों के रंग इतने चटक होते हैं। इसी तरह नावों तथा जहाजों के भी। आदमी भी तेज रंगों के कपड़े पहनते हैं। गर्म रंग यहाँ अच्छे समझे जाते हैं, जबकि हमारे देश में शीतल रंग, जिन्हें ''कूल कलर'' कहते हैं, अधिक प्रचलित हैं। शायद इसका एक कारण भीषण ऊष्णता भी हो सकता है।

ड्रमन शहर की एक हल्की-सी झाँकी देखने के बाद हम फिर आगे बढ़ रहे हैं।

सेब के बगीचे यहाँ बहुत अधिक संख्या में दिखलाई दे रहे हैं।

''घोड़ों का भी यहाँ एक विशाल फार्म है।'' गाइड बतलाता है।

मैं देख रहा हूँ — सामने एक बहुत बड़ा फार्म है। बहुत-से घोड़े दौड़ रहे हैं — एक झुण्ड की शक्ल में। उनके पीछे-पीछे घोड़ों के बछेरे भी कुलाँचें भरते हुए भाग रहे हैं। हवा में उनकी नन्हीं-नन्हीं पूँछें लहरा रही हैं।

सामने पहाड़ हैं। इन्हीं पहाड़ों से घिरी घाटी हम पार कर रहे हैं।

पुराना पुल है। बहुत पुराना। ऊपर से तेज गति से बसें, कारें, हवा से बातें करती हुई सरपट भागी चली जा रही हैं— फिसलती हुई। मेरी समझ में नहीं आता, यहाँ प्राय: सभी बसों, कारों में हेड-लाइट्स क्यों जलाई जाती हैं? अभी तो दिन है।

सड़क के किनारे एक अकेली दुकान है। बाहर बड़ा-सा बोर्ड लगा है — अंडों पर पन्द्रह प्रतिशत छूट !

"यहाँ किस चीज के कारखाने हैं ?"

"लोहे के पुलों के हिस्से बनते हैं यहाँ।"

"और— ?"

"एस्बेस्टेस की फैक्टरी है...।"

सड़क से कोई सात-आठ सौ गज की दूरी पर पुरानी कारों की कब्रगाह है। ढेर सारा कारों का मलवा पड़ा है — एक टीले की शक्ल में।

अब हम होकेसन शहर के पास हैं। हाँ, इसे शहर न कहकर शहर या कस्बे के बीच का कोई नाम दें तो अधिक अच्छा रहेगा।

ट्रेन का क्रासिंग पार करते हैं तो फिर वैसी ही हरियाली।

जौ की फसल अब पूरी तरह पक गई है। पीली-पीली चादरें दूर-दूर तक फैली हैं — ढलानों को घेरती हुई। गेहूँ की फसल भी दीखती है। परन्तु उतनी अधिक नहीं। यहाँ के गेहूँ की रोटियाँ हमारे देश की तरह सफेद नहीं, कुछ-कुछ साँवली सी होती हैं। खाने में भी उतनी स्वादिष्ट नहीं।

तीर की तरह जल को चीरती हुई एक नाव भागी चली जा रही है।

घरों की खिड़कियाँ प्राय : बंद दीखती हैं। वे हवा के लिए उतनी नहीं, जितनी मात्र प्रकाश के लिए बनाई गई हैं।

पहाड़ी के दाहिने सिरे पर ढलान है। देवदार के नए-नए पौधे उग रहे हैं। शायद नया प्लांटेशन है।

ठीक सामने एक बोर्ड लगा है। लिखा है — लारविक छह किलोमीटर।

□ □ □

9

चाँदी की खानें

थोड़ी ही देर बाद घोषणा सुनाई देती है कि अब हम चाँदी की खानों के बहुत निकट हैं। इन्हें ''कांग्सवर्ग सिल्वर माइन'' के नाम से पुकारा जाता है।

बड़ा कौतूहल हो रहा है मन में।

अब तक भारत में लोहे की खानें देखीं। कोयले की भी। किन्तु चाँदी की खानें देखने का यह पहला अवसर है।

बस एक कच्चे, समतल मैदान में रुक जाती है। पहाड़ के पास, जिसे खान के दरवाजे के समीप भी कह सकते हैं।

''सभी यात्री गरम कपड़े पहन लें, क्योंकि खान के भीतर भीषण सर्दी का सामना करना पड़ेगा। तापमान 5 डिग्री सेंटीग्रेड से भी कम होगा।'' माइक पर घोषणा होती है।

सामने एक नन्हीं-सी, बच्चों की जैसी रेलगाड़ी है। लगभग ऐसी रेलगाड़ी कभी दिल्ली के चिड़ियाघर में भी हुआ करती थी। बल्कि उससे भी छोटी। पीले, गहरे पीले रंग से पुती। पटरियाँ भी छोटी-छोटी। इंजन भी छोटा। डिब्बे और भी छोटे। एक के भीतर चार आदमी से अधिक नहीं समा सकते हैं।

दूर से देखने पर यह बाल-रेलगाड़ी सच, कितनी आकर्षक लग रही है!

अब सूचित किया जाता है कि हमारी रेलगाड़ी चाँदी की खान के भीतर यानी कि सामने खड़े पहाड़ के भीतर समाने के लिए तैयार है। अत: सभी यात्री कृपया डिब्बों में बैठ जाएँ।

अपनी-अपनी पसंद के डिब्बों में सब लपक कर ओझल हो जाते हैं! दो-दो यात्री आमने-सामने मुँह करके बैठ जाते हैं।

यह डिब्बा इंजन से लगा है। स्वाभाविक है, शोर कुछ अधिक सुनाई देगा। किन्तु आगे बैठने का अपना एक अलग ही आनंद है न! सबसे पहले बैठने का अहसास।

बैठने के साथ-साथ यह भी आदेश दे दिया गया है कि दरवाजा बंद करना आवश्यक है। नहीं तो कोई भी दुर्घटना घट सकती है।

दरवाजा भी क्या है? मात्र जाली का द्वार।

उसे खींच कर सामने सरका देते हैं।

कुछ ही क्षणों के पश्चात खुट-खुट... खुट-खुट... ! गाड़ी चल पड़ती है — अंधेरे में ठंडे अंधेरे पहाड़ के भीतर — सारी गाड़ी ओझल हो जाती है जैसे अजगर किसी विशाल बिल में समा गया हो।

घुप्प अंधेरे में हम कहाँ जा रहे हैं। पातालपुरी में? पता ही नहीं चलता। रेलगाड़ी के डिब्बों में प्रकाश की व्यवस्था नहीं। टनल इतनी छोटी है कि हाथ बाहर निकालें तो रगड़ खा जाए।

हम दहशत से चारों ओर देखते चले जा रहे हैं? पर रेल भी क्या मुसीबत है। कहीं रुकने का नाम ही नहीं ले रही है। कहीं प्रकाश की एक भी तो किरण नहीं।

धीरे-धीरे जाड़ा भी बढ़ता चला जा रहा है।

अरे, बाप-रे-बाप! अब तो कंपकंपी छूटने लगी है।

अपने-अपने हाथ सभी यात्रियों ने जेब में ठूंस लिए हैं। कहीं ठण्ड न लग जाए!

भीतर पता नहीं, कहाँ से बर्फीली हवा के थपेड़े लग रहे हैं।

खट्-खट्।

खुट-खुट।

लोहे से लोहे के टकराने की आवाज।

और कुछ सुनाई नहीं देता।

लोग परस्पर बातें भी करते हैं तो कुछ इस तरह से जैसे बहरे से बहरा बातें कर रहा हो।

पता नहीं कब, रेलगाड़ी की गति कुछ-कुछ धीमी होने लगती है और एक क्षण वह भी आता है जब वह पत्थर की तरह खड़ी हो जाती है। स्वयं भी ठिठुरने लगती है ठंड से।

यहाँ कुछ-कुछ प्रकाश है। हल्के, पीले बल्ब कहीं दूर चमक रहे हैं। साँस लेने के लिए भी कुछ खुला स्थान है। हम बड़े जतन से नीचे उतरते हैं।

यह तिराहा, नहीं, नहीं, एक चौराहा-सा है।

अलग-अलग दिशाओं में लंबे-चौड़े मार्ग। कच्चे। धूल-भरे।

यह चौराहा-सा काफी खुला-खुला है। हमें बतलाया जा रहा है, "चाँदी की ये खानें कभी बड़ी महत्वपूर्ण रहीं। नार्वे की आर्थिक समृद्धि में इनका बड़ा हाथ रहा। सन 1623 में यहाँ सबसे पहले चाँदी मिली। किन्तु बाद में बड़ी मात्रा में चाँदी निकालने का काम आरंभ हुआ सन 1642 से। लगभग तीन सौ साल तक लगातार चाँदी निकाली जाती रही है...।"

"अब तो चाँदी नहीं निकाली जाती न!" पूछता हूँ।

"नहीं, सन 1956 के बाद इसे बंद कर दिया गया।"

"क्यों ?"

"क्योंकि आर्थिक रूप से यह उपयोगी नहीं रही।"

यहाँ हड्डी तक को कंपा देने वाली सर्दी है। कंपकंपी छूट रही है। हाथ-पाँव ठिठुर रहे हैं। लगता है, कुछ देर और रहे तो बर्फ बन कर जम जाएँगे।

हम पहले दाहिनी तरफ चलते हैं।

चित्र 11 — स्टेव चर्च

यहाँ गहरा कुआँ-सा है। लगता है जैसे पाताल लोक तक चला गया है। ऊपर से झाँकने पर अंधेरे के अलावा और कुछ नहीं दीखता। ऊपर से रस्सी की सीढ़ियाँ लगी हैं, लकड़ी के टुकड़ों से बंधी।

किस तरह लोग इन सीढ़ियों की सहायता से नीचे उतरते थे। किस तरह चाँदी मिली मिट्टी ऊपर लाते थे, यह हमें समझाया जाता है।

सुविधाएँ तब अधिक नहीं रही होंगी। किन्तु नीचे उतरने तथा ऊपर आने की यह प्रक्रिया कितनी आसान है! कितनी वैज्ञानिक।

इन बर्फीले इलाकों में, जहाँ छह महीने बर्फ का प्रकोप रहता है यानी केवल शेष छह महीने ही काम करना संभव हो सकता है — वहाँ इन खानों से खनिज निकालना कितना कठिन होता होगा।

जगह-जगह उलझे हुए, मोटे, पुराने बिजली के तार। कहीं लकड़ी के झूलते खंभों से लिपटे, कहीं कच्ची दीवारों से चिपके।

जहाँ तक आसानी से पहुँचा जा सकता है, सब जाने-देखने की कोशिश कर रहे हैं।

कुछ लोग मुट्ठी में कच्ची मिट्टी लेकर उसमें से चाँदी के कण खोज रहे हैं।

जब अधिक देर तक यहाँ टिक पाना संभव नहीं लगता तो लौटने की तैयारी करते हैं।

''खुट्-खुट्'' गाड़ी फिर रवाना होती है।

मैं घड़ी देखता हूँ। ठीक दस मिनट का समय लगता है — ट्रेन को बाहर आने में।

बाहर पहुँचने पर सब खुला-खुला सा लगता है।

पीली हल्की-हल्की धूप और भी मीठी लगती है।

बाहर, पहाड़ी के द्वार पर एक छोटा-सा कार्यालय है। यहाँ पर सीधे चट्टान से निकाले चाँदी मिले पत्थर के छोटे-छोटे टुकड़े बिक्री के लिए रखे हैं। यात्री यादगार के रूप में ले जाना पसंद करते हैं।

मैं एक छोटा-सा टुकड़ा उठाता हूँ।

"इसकी क्या कीमत होगी ?"

"चालीस क्रोनर।"

यानी साठ रुपये!

काठ का गिरजाघर

मेनहाया की दिशा में बस आगे बढ़ रही है। आबादी यहाँ इतनी अधिक नहीं, फिर भी सुंदर-सुंदर, बड़े-बड़े फार्म दीख रहे हैं। कहीं-कहीं इक्के-दुक्के कारखाने भी।

यहाँ दूर तक बिखरी समतल भूमि है।

"हम अब आपको एक और याद रखने लायक वस्तु दिखलाएँगे।" बस का गाइड कहता है।

कुछ किलोमीटर की दूरी तय करने के पश्चात एक गिरजाघर के पास बस रुक जाती है।

"यही है 'हेदल स्टेव चर्च' नार्वे का सबसे पुराना गिरजाघर। यह सन् 1250 में बना था।" गाइड का स्वर है।

आसमान की ओर सिर उठाए एक विशाल चर्च।

सचमुच यह अचम्भे की बात है कि इतनी शताब्दियों के बाद भी यह लकड़ी का बना विशाल भवन ज्यों का त्यों खड़ा है।

लकड़ी की दीवारों पर रंग-बिरंगे चित्र हैं।

ये चित्र सन् 1668 में बनाए गए थे।

सदियों पुरानी कुर्सियाँ हैं। लगता है, पेड़ का तना खोदकर बनाई गई हैं।

"ये काठ की कुर्सियाँ एक हजार साल पुरानी हैं। दरवाजे पर विश्व की विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित धार्मिक पुस्तिकाएँ हैं। एक तमिल भाषा की भी है।

"इस गिरजाघर में प्रति शनिवार विवाह होते हैं।"

गिरजाघर के बाहर सदियों पुरानी कब्रें हैं। बड़े कलात्मक ढंग से सजाई हुई।

एक बच्चे की कब्र है, लगभग सौ साल पुरानी। जिसके ऊपर चीनी-मिट्टी के बने तरह-तरह के फल हैं और खेलने के लिए पास ही चीनी-मिट्टी का एक रंगीन पक्षी।

कब्र के ऊपर लिखा है—

इसे चिड़ियों से बहुत प्यार था!

क नसीहत

हर्दल!

इस स्थान का यही नाम है।

एक छलछलाती नदी है। ठण्डे पानी की धाराएँ। यहीं पर दोपहर का भोजन करने का

चित्र 12 — रेण्डियरों को हांकता एक लैप

कार्यक्रम है।

ओस्लो से प्रात : चलते समय ही निश्चित कर लिया था कि सभी यात्री अपना लंच पैकेट साथ रख लेंगे। अन्य सामग्री बस के साथ ले चलेंगे। जंगल में तो कुछ मिलेगा नहीं।

बस के पेट में — नीचेवाले खाने में गरम-गरम चाय। काफी। फल। बिस्कुट। फलों के रस सहेज कर रखे गए हैं ताकि कहीं; किसी सुंदर वन प्रदेश में पिकनिक का सा आनंद उठाया जाए।

नदी धूप में लेटी है। पता नहीं, किस पहाड़ से उतरकर किस घाटी की ओर जा रही है।

नीचे ढलान पर छिछली चट्टानें हैं। थोड़ा-सा नीचे आँगन के बराबर समतल गड्ढा-सा है, जिसने तालाब की शक्ल अख्तियार कर ली है।

पारदर्शी जल है। ठण्डा। मीठा। अमृत जैसा। बस रुकते ही यूरोपियन सैलानी कपड़े उतारकर छपाछप तालाब में गोते लगाने लगते हैं। औरतें भी मछलियों की तरह तैरने लगती हैं।

बर्फीले पानी में उँगली छुआते ही लगता है, कटकर गिर जाएगी। किन्तु ये कितने आनंद से नहा रहे हैं !

कुछ देर तैरने के बाद फिर सूखी चट्टान पर चित्त होकर लेट जाते हैं। लगता है, जैसे सफेद मगरमच्छ धूप में लेटा है।

जहाँ वर्ष के अधिकांश महीनों में बर्फ, कुहासा हो, बादल हों, ठण्डी हवाएँ हों, वहाँ थोड़ी-सी धूप कितनी सुहानी लगती है — इसका महत्व इनके अलावा और कौन जान सकता है।

सब अपना-अपना भोजन लेकर अपनी मित्रमंडली में घेरा बना कर बैठ जाते हैं। मिलकर बाँटकर खाते हैं।

कुछ अफ्रीकी और एशियाई यात्रियों ने केले और संतरे के छिलके नीचे चट्टान पर फेंक दिए हैं। कागज के टुकड़े भी झाड़ियों के नीचे।

नार्वेजियन बस-चालक को यह अच्छा नहीं लगता। अपने साथियों के साथ वह सारे रद्दी

कागजों को समेटता है। छिछली चट्टान पर उतरकर, जोखिमं उठाता हुआ, केले, संतरे के छिलके समेटता है और पालिथिन की काली थैली में उन्हें बंद कर के बस की एक पेटी में रख देता है।

बाद में मैं पूछता हूँ तों कहता है, "हमारे यहाँ इस तरह फेंकना अच्छा नहीं समझा जाता।"

"जंगल में...।"

"जंगल में हुआ तो क्या हुआ ? गंदगी तो गंदगी है। हम वातावरण को गंदा करना अपराध समझते हैं।"

"तो इन छिलकों का क्या करोगे अब ?"

"कल शाम ओस्लो ले जाकर कूड़े के काले थैले में फेंक देंगे।"

काश, वातावरण के प्रति इतनी जागरूकता हमारे देश में भी होती !

पहाड़ों के ऊपर कहीं-कहीं बर्फ दीख रही है; हेयदल से रवाना हुए काफी समय हो गया है। अब हम फ्लातोल के पास हैं।

"यहाँ एक चित्रकार रहता है। गर्मियों में सबको पेंटिंग सिखलाता है।"

बस से उतर कर हरी वादी के चित्र खींचते हैं। स्ट्राबेरियाँ बिक रही हैं। बाँस की एक कटोरी हम भी ले लेते हैं। वाह, क्या मीठी हैं !

सड़क पर गाएँ चल रही हैं।

भेड़ों के भी झुंड।

"सड़क दुर्घटना में यदि कोई गाय जख्मी हो जाए तो दस हजार क्रोनर का जुर्माना भरना पड़ता है।"

"भेड़-बकरियों पर।"

"एक हजार से पंद्रह सौ क्रोनर तक।"

चित्र 13 — पतझड़ के आरम्भ में रंग बदलते वन

10

भारी पड़ा भारी पानी

शाम हो जाती है, जब वहाँ पहुँचते हैं।

रुकनफेल्सट्वा इस शहर का नाम है। बतलाया जाता है कि यह सन 1905 में बसा था।

दो विशाल पहाड़ गगनचुंबी। बीच में गहरी घाटी। इतनी गहरी कि पातालपुरी का अहसास जगाती है। घाटी में रासायनिक खाद का एक बड़ा, बहुत बड़ा कारखाना है।

ठीक सामने वाले पहाड़ की तिरछी ढलान पर बड़े-बड़े छह-सात पाइप नीचे की ओर चले गए हैं। एक इमारत के पास तक।

"यह क्या है ?" पूछता हूँ।

"यही तो है वह ऐतिहासिक कारखाना...।"

"कौन-सा ?" गाइड की ओर देख कर पूछता हूँ।

"जिसका हम जिक्र कर रहे थे न ! अरे, याद नहीं आ रहा है भारी पानी का कारखाना।" वह आगे उसी रफ्तार से बतलाता जाता है, "दूसरे विश्वयुद्ध के समय हिटलर ने नार्वे पर जो आक्रमण किया था, उसका एकमात्र कारण यही था कि वह इस कारखाने पर कब्जा करना

चाहता था ताकि यहाँ से प्राप्त भारी पानी की सहायता से वह परमाणु बना सके और युद्ध में विजय प्राप्त कर अपनी जीत का झंडा सारी दुनिया में फहरा सके।"

"तो क्या वह कब्जा कर सका?" पूछता हूँ।

"हाँ, हाँ! क्यों नहीं। सबसे पहले उत्तर के नार्विक बंदरगाह पर हिटलर की नौ सेना ने हमला किया। इस युद्ध में हिटलर ने सब कुछ झौंक दिया,जिसका नतीजा यह हुआ कि नार्विक ही नहीं जीता, उसने टेलीमार्क पर भी कब्जा कर लिया और साथ ही साथ अपने अधिकार में ले लिया भारी पानी का यह कारखाना भी। किन्तु नार्वे के निवासियों ने हार स्वीकार नहीं की। जमीन के भीतर जो भारी पानी का कारखाना था,उसे स्वयं ही ध्वस्त कर डाला ताकि भारी पानी भविष्य में नाजी न बना सकें।

कुछ सोचते हुए वह आगे बतलाता है, नाजियों के सपने समाप्त हो गए। परन्तु फिर भी वे अपने प्रयासों में जुटे रहे। जितना भारी पानी बचा था उसे एक बोट में ले जाने लगे तो नार्वेजियनों ने विस्फोट करके वह नाव भी डुबो डाली...। कितने ही लोगों ने अपने प्राणों की आहुति दे दी,परन्तु हिटलर को सबक सिखला कर ही चैन की साँस ली।"

"नाजियों ने इसका बदला नहीं लिया?" पूछता हूँ।

"जो कुछ वे कर सकते थे, करते रहे! परन्तु टेलीमार्क के निवासियों की वीरता का भी जवाब नहीं। यद्यपि सारा नार्वे नाजियों के अधिकार में आ गया,परन्तु इस क्षेत्र में संघर्ष चलता रहा।"

शाम को सब लोग अपने-अपने संगी-साथियों के साथ घूमने निकल पड़ते हैं।

हम भी पता नहीं, कितनी दूर पहुँच गए हैं।

कहीं दूर, गहरी घाटी में एक नदी है। विशाल बाँध बना है। बिजलीघर है।

हमारे आस पास दूर-दूर अनेक घर बसे हुए हैं।

घने जंगलों में बसे इन घरों को देखकर कम आश्चर्य नहीं होता। पता चलता है कि इन्हें यहाँ 'समर हाउस' यानी ग्रीष्म निवास नाम से संबोधित करते हैं।

काठ के छोटे-छोटे घर। हर प्रकार की सुविधाओं से संपन्न। फ्रिज। टेलीविजन। रेडियो

— आधुनिक सुखों की प्राय : सभी वस्तुएँ। आसपास कहीं-कहीं जंगलों में फलों के वृक्ष भी दिखाई दे रहे हैं।

गत कुछ वर्षों से नार्वे में एक आंदोलन चल रहा है — प्रकृति की ओर चलो।

यद्यपि यह विचार विश्व-युद्ध के पश्चात शुरू हुआ था, किंतु गत कुछ वर्षों से काफी प्रचलित हो गया है। शहरों के कोलाहल से दूर लोग एकांत में रहना अधिक पसंद करते हैं — छोटे-छोटे घर बनाकर। जब भी अवकाश मिलता है, चुपचाप चले आते हैं।

ज्यों-ज्यों लोगों के रहन-सहन का स्तर बढ़ रहा है, त्यों-त्यों ग्रीष्मकालीन घरों की संख्या में वृद्धि होती चली जा रही है।

ऐसे कई समर हाउस पहाड़ों में, समुद्र के किनारे, अलग-अलग बिखरे दीखते हैं।

डेरे में लौटते-लौटते रात का एक बज गया है, परन्तु अंधेरा नहीं।

पहाड़ की ऊँचाई पर स्थित है यह होटल, जहाँ अभी तक भी संगीत का कार्यक्रम चल रहा है। कुछ अफ्रीकी ताल के साथ उछल-उछल कर नाच रहे हैं।

देखी हिमयुग की बर्फ

प्रात : बहुत जल्दी उठते हैं।

क्योंकि कई स्थान देखने का कार्यक्रम है। हम नाश्ते के बाद निकल पड़ते हैं। निचली घाटी की ओर, जहाँ खाद का कारखाना है।

सामने आसमान को छूता पर्वत है, जहाँ बर्फ है, वहाँ सफेद चोटी चमक रही है।

बड़े पेंचदार मोड़ हैं। फीते की तरह उलझे हुए। हमारी बस बच-बचकर, संभल-संभल कर निकल रही है।

घाटी में पहुँचते ही लगता है जैसे दो विशाल पत्थरों के बीच फंस पड़े हों।

यहाँ अक्तूबर से मार्च के प्रथम सप्ताह तक सूरज नहीं दीखता — इन दो बड़े-बड़े पर्वतों की दो दीवारों के कारण। मार्च के आरंभ होते ही जब पहली बार सूर्य के दर्शन होते हैं तो ये लोग बडा उत्सव मनाते हैं जिसे 'सन फेस्टीवल' यानी "सूर्य-उत्सव" कहते हैं।

घाटी के बाद अब जैसे एकदम सीधी खड़ी दीवार पर गाड़ी चल रही है।

भारी पानी का कारखाना ओझल हो गया है। बड़े-बड़े अजगर से मोटे पाइप भी।

लगता है — आसमान की दिशा में बढ़ रहे हैं — बढ़ते चले जा रहे हैं।

ऊपर एक समतल भूमि पर गाड़ी रुकती है।

आश्चर्य होता है यह देखकर कि यहाँ भी दो झीलें हैं। इस ऊँचाई पर! यानी पहाड़ की चोटी के निकट!

सामने बर्फ दीख रही है, जैसे हाथ बढ़ाकर बटोरी जा सकती है।

हिमयुग से अब तक इस पहाड़ में बर्फ है।

"मैं समझा नहीं।" कहता हूँ।

"इस पहाड़ के ऊपर, जिस पर हम खड़े हैं, बर्फ गिरी रहती है जो गर्मी आते ही पिघल जाती है। किन्तु दूर-संचार के लिए जब इस पहाड़ को खोदा जा रहा था, चोटी के पास, तो भीतर से बर्फ निकली थी। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि वह बर्फ हिमयुग की थी।

इस पर्वत का नाम है — येगुस्ता।

इसकी चोटी 1883 मीटर ऊँची है।

यहाँ से संपूर्ण नार्वे का 20 प्रतिशत भाग अपनी आँखों से देखा जा सकता है।

"यह जो सामने झील है, इसका नाम क्या है?" पूछता हूँ।

"हैदरदल।"

हैदरदल के दाएँ-बाएँ भी दो छोटी-छोटी झीलें हैं। सम्भवत: पहाड़ पर जमी बर्फ के पिघलने से बनी हों।

इन्हीं के पास, सड़क के किनारे बस खड़ी है।

तय होता है, सब लोग जहाँ चाहें, घूमें फिरें। परन्तु ठीक बारह बजे यहाँ वापस लौट आएँ। तभी भोजन की व्यवस्था होगी।

हम लोग पहाड़ की चोटी पर चढ़ना चाहते हैं।

सामने पहाड़ की चोटी से, नीचे तक एक सफेद चादर-सी फैली है। बर्फ की वह चादर

होले-होले पिघल रही है। नीचे एक नन्हा-सा झरना बन गया है। हम अंजुलि भर-भरकर वह अमृत-सा मधुर जल पीते हैं।

झरने के ऊपर पत्थर हैं। मेंहदी रंग के। लगता है जैसे किसी ने कहीं दूर से उठा कर यहाँ ढेर की शक्ल में पटक दिए हैं।

पत्थर-ही-पत्थर।

इन्हीं पत्थरों से होकर हमें ऊपर जाना है।

बर्फ पर खड़े होकर यात्री फोटो खिंचवा रहे हैं। सबके वश का यहाँ तक भी पहुँच पाना सम्भव नहीं। अतः अधिकांश नीचे से ही लौट रहे हैं।

हमें कोई सज्जन बतला रहे हैं—

"लाखों साल पहले उत्तरी ओस्लो क्षेत्र ज्वालामुखी था। कालान्तर में वह धंस गया और उसी से बन गया — ओस्लो फीयोर्ड।"

हम एक-एक पत्थर पर चढ़कर ऊपर, और ऊपर की ओर बढ़ रहे हैं।

दूर एक चिड़िया दीख रही है, ठीक तीतर जैसी।

पत्थरों की दरारों में से पीले-पीले फूल झाँक रहे हैं। कहीं-कहीं सफेद और कहीं लाल।

चलते-चलते जब थक जाते हैं, तो पीछे मुड़कर देखते हैं —

अरे, इतनी दूर से अब लौटेंगे कैसे ?

जल्दी-जल्दी नीचे की ओर लपकते हैं।

दम फूल गया है। सब हाँफ रहे हैं।

नीचे पहुचकर देखते हैं — सब आराम से बैठे सुस्ता रहे हैं। चट्टानी पत्थरों पर बैठकर कुछ लोग भोजन कर रहे हैं।

हमारे ठीक सामने भेड़ों का झुंड है। यहाँ की भेड़ें हमारे यहाँ की भेड़ों से भिन्न हैं। आकार-प्रकार में भी बड़ी हैं।

"चृ-चृ?" हाथ हिलाकर बुलाने पर सचमुच कुत्ते की तरह दुम हिलाकर पास आ जाती

हैं। सब के कान छिदे हैं। उनमें अल्युमीनियम की एक छोटी-सी पत्ती लटक रही है, जिसमें मालिक के मकान का नम्बर लिखा है।

इनकी पूछें इतनी लम्बी हैं कि ज़मीन को छू रही हैं। पाँवों के ऊपर से ही मुलायम बाल गुंथे हैं। गले में टन-टन बजती घंटियाँ।

आपस में सींग भिड़ाकर लड़ने में इनका कोई जवाब नहीं। अपने अगले दोनों पाँव हवा में झट से खड़े कर देती हैं।

भेड़ें पालना नार्वे निवासियों का एक प्रमुख धंधा है। खेती के साथ-साथ जहाँ चरागाह उपलब्ध हैं, लोग भेड़ें भी पाल लेते हैं। उत्तरी नार्वे में भेड़ों और बकरियों के बड़े-बड़े फार्म हैं। छोटे किसानों के लिए भी यह धंधा लाभदायक रहता है, क्योंकि बर्फ के कारण साल भर तो खेती हो नहीं सकती। वर्षभर में एक फसल भी मिल जाए तो बहुत है। शेष समय का उपयोग इन कामों में आसानी से किया जाता है।

फीयोर्ड क्षेत्रों में, जहाँ हल्के-हल्के पहाड़ी ढलान हैं, भेड़ें अधिक संख्या में पाली जाती हैं। यों भेड़-पालन बहुत आसान धंधा है, मुर्गी पालन की तरह।

अब हम दूसरी दिशा में आगे बढ़ रहे हैं। लौटने की प्रक्रिया में हैं, एक अलग रास्ते से।

लिदल झील के पास भी मेंहदी रंग के पत्थरों की भरमार है। झीलों के बीच में छोटे-छोटे द्वीप हैं, जहाँ देवदार के वृक्ष उगे हैं।

यहाँ के कुछ मकान पुराने ढंग के हैं जिनकी छतों पर घास उगी है। कहीं-कहीं मैजण्डा रंग के फूल भी झाँक रहे हैं।

एक काठ का मकान सन् 1796 का बना है। लकड़ी-की भारी-भारी बल्लियाँ अभी भी स्वस्थ हैं।

हम सौ साल पुराना एक संग्रहालय देखते हैं।

टेलीमार्क क्षेत्र समाप्त हो रहा है।

अभी थोड़ी ही दूरी तय कर पाते हैं कि एक छोटे-से शहर के पास बस रुक जाती है।

"यहाँ कोबाल्ट की खानें हैं।"

वही कोबाल्ट,जिससे नीला रंग बनता है, जिससे नीला शीशा बनाया जाता है, जो सदियों से चीन को निर्यात किया जाता रहा है। चीनी मिट्टी के बर्तनों में नीली कारीगरी भी की जाती है।

वही कोबाल्ट, जिसकी किरणों से असाध्य रोगियों का इलाज किया जाता है।

वही कोबाल्ट, जिससे महाविनाशकारी "कोबाल्ट बम" भी बनाया जाता है।

साँझ हो गई है। कोबाल्ट की खानें देखते हैं और उन शीशे के बर्तनों को भी जिन्हें कोबाल्ट की सहायता से रंगा गया है।

यादगार के रूप में एक नन्हीं-सी नीली कटोरी खरीद लेते हैं।

□ □ □

चित्र 15 — उत्तरी नार्वे के रास्ते में

11

आर्ने ने कहा

ओस्लो के बहुत से दर्शनीय स्थल देख चुके हैं। अब थोड़ा-सा नार्वे निवासियों को भी निकट से देखना चाहते हैं। यानी नार्वे का जन-जीवन।

किस तरह से ये लोग रहते हैं ?

क्या इनका जीने का तरीका है ?

क्या है जीवन-दर्शन ?

हमारे एक प्रवासी भारतीय मित्र हैं। प्रबुद्ध हैं। व्यवहारकुशल हैं। गत 20-25 साल से यहाँ रह रहे हैं। नार्वेजियन बहुत अच्छी बोल लेते हैं तथा कई नार्वेजियन परिवारों से इनके आत्मीय संबंध हैं।

एक नार्वेजियन परिवार से वे हमारा परिचय कराते हैं। नार्वेजियन परिवार के सभी सदस्य बहुत प्रसन्न नज़र आते हैं कि किसी भारतीय को उनकी जीवन शैली के प्रति इतनी दिलचस्पी है।

"ये हैं आर्ने।" वे परिचय कराते हैं।

नार्वे में नाम के आगे "मिस्टर" या "श्री" शब्द का प्रयोग अमूमन नहीं होता। बिना

इन शब्दों का विशेषण लगाए. सीधे-सीधे नाम को संबोधित करना आत्मीयता का प्रतीक माना जाता है।

"ये योशी (जोशी), हमारे भारतीय मित्र ?" वे मेरा परिचय देते हैं।

एक दिन आर्ने मुझे अपने घर आमंत्रित करते हैं जो ओस्लो शहर से अधिक दूर नहीं।शहर से थोड़ा-सा ही हटकर।

मेरे भारतीय मित्र मुझे वहाँ तक छोड़ने का दायित्व स्वयं ले लेते हैं।

एक दिन निकल पड़ते हैं। गाड़ी कुछ ढलानों को पार करती हुई आगे बढ़ रही है। थोड़ी ही देर पश्चात एक घर के आगे रुक जाती है।

"यही है आर्ने का घर।"

मित्र गाड़ी का दरवाजा खोलते हैं। मैं भी अपनी सीट से बँधी पेटी उतारने लगता हूँ।

नार्वे में तीन-चार बातें मैं नई देख रहा हूँ—

गाड़ियों के हार्न बजते मैंने कभी नहीं सुने।

हमारे देश की तरह गाड़ियाँ बाईं तरफ नहीं, दाईं तरफ चलती हैं। यानी "कीप लैफ्ट" के स्थान पर "कीप राइट।"

जो भी यात्री गाड़ी में बैठता है, वह बैल्ट अवश्य बाँधता है। ड्राइवर के लिए भी यह आवश्यक है। इसे न बाँधने पर जुर्माना भी हो सकता है।

शराब पीकर गाड़ी चलाना बड़ा जुर्म है। जगह-जगह सिपाही गाड़ी रोकते हैं। एक यंत्र ड्राइवर के मुँह के समीप ले जाते हैं, जिससे पता चल जाता है कि ड्राइवर ने कहीं शराब तो नहीं पी! शराब पीने की स्थिति में लायसेंस'का जब्त हो जाना आम बात है।

आर्ने हमारा स्वागत बड़ी गर्मजोशी के साथ करते हैं। ज्यों ही हमारी कार पहुँचती है, वे लपककर बाहर आते हैं। साथ में उनकी पत्नी भी हैं, जो लगभग उन्हीं की उम्र की हैं। स्कर्ट पहने हैं।

भारतीय मित्र को कहीं आवश्यक कार्य है। वे मुझे छोड़कर चले जाते हैं।

बंगलानुमा अच्छा-सा घर। साफ-सुथरा। कहीं एक तिनका तक नहीं। घर के सामने हरा-भरा लॉन है जिसके बीच में प्लास्टिक का एक बहुत बड़ा टब है। नन्हा-सा स्वीमिंग पूल, जिसमें प्लास्टिक की लम्बी पाइप से पानी भर रहा है। उनके दोनों बच्चे किलकते हुए नहा रहे हैं।

वे परिचय कराते हैं — यह ऐक्सल! मेरा बेटा। और यह बिटिया एलिजा।

थोड़ी-सी औपचारिकता के पश्चात वे दोनों बच्चे फिर अपने स्वीमिंग-पूल में चले जाते हैं — खेलने!

है न यह आश्चर्य की बात कि हमें सर्दी लग रही है और ये बच्चे नहाने का आनंद ले रहे हैं। बीच-बीच में उनकी मीठी खिलखिलाहट भी साफ सुनाई दे रही है। बच्चे होते हुए भी उनके व्यवहार में शालीनता है। गरिमा है। नटखटपना तो है, पर उदंडता नहीं।

जब तक शीतल पेय आता है, बच्चे भी कपड़े पहन लेते हैं और हमारे साथ बातचीत में शामिल हो जाते हैं।

हम लोग इस सुहाने मौसम में बाहर लॉन पर बैठना ही पसंद करते हैं। दूब में बेंत की-सी हल्की-हल्की कुर्सियाँ रख दी गई हैं।

एलिजा के केश सुनहरे हैं। एकदम चमकीले। लम्बे। चेहरा गोलाई लिए है। बड़ी-बड़ी आँखें। गुड़िया-सी ही तो है। लाल-लाल, पीली-पीली। चमकीली। चेहरे पर बड़ी मासूमियत है।

आर्ने बतलाते हैं, "इसने अभी-अभी कक्षा तीन की पढ़ाई पूरी की है। स्कूल में केवल तीन घंटे व्यतीत करती है। स्कूल अधिक दूरी पर नहीं है। इसलिए कभी-कभी मैं छोड़ आता हूँ। यों बस भी आसानी से मिल जाती है। पैदल चलें तब भी पच्चीस-तीस मिनट से अधिक नहीं लगते। पर यह नटखट है कि ....!" वह हँस पड़ते हैं। साथ ही उसी ढंग से एलिजा भी।

कुछ रुककर वे ऐक्सल की ओर देखते हैं, "बड़ा शरारती हो गया है अब! अभी केवल सवा चार साल का है, पर बड़े-बड़ों के कान काटता है।"

"किस कक्षा में पढ़ रहा है?"

"अभी किंडरगार्डन में नहीं भेजा...।" कुछ रुककर वे कहते हैं, "यों हमारे यहाँ

चित्र 16 — उत्सव: विद्यार्थियों का जुलूस

के.जी. यानी किंडर गार्डन में दाखिला लेना आसान नहीं। नार्वे में इनकी संख्या कम है और छात्रों की संख्या अधिक।''

आर्ने पेशे से वकील हैं। पत्नी भी काम करती हैं।

सबसे पहले हम उनका बगीचा देखते हैं। तरह-तरह के पौधे हैं। एक किनारे पर सब्जियाँ उग रही हैं। चेरी का भी एक पेड़ है।

''ये सारे पौधे मैंने और एलिजा बेटी ने लगाए हैं।''

एलिजा यों ही मुफ्त में अपनी प्रशंसा सुन कर हँस देती है।

''एलिजा को बागवानी का बड़ा शौक है। ज्यों ही बर्फ पिघलती है, वह कुदाली लेकर क्यारियों में चली जाती है...।''

एलिजा और खुश होती है।

बाग-बगीचा देखने के बाद हमें घर के भीतर ले जाते हैं — यों ही घूमते-घूमते कहते हैं, "हम सचमुच बहुत भाग्यवान हैं जो इतना अच्छा घर मिल गया। शहर से कुछ दूर अवश्य है, पर आरामदेह कम नहीं। ...नार्वे में भी अब मकानों की समस्या शुरू हो गई है। शहर हों या कस्बे, मकान मिलने कठिन हो गए हैं। मेरे भाई की शादी दो साल से रुकी है, क्योंकि अब तक उन्हें ढंग का कोई मकान नहीं मिल पाया...।"

तभी आसमान से एक छोटा-सा विमान मर्र से निकल भागता है, जैसे चील भागी हो।

हम सब घूम-घाम कर फिर अपनी-अपनी जगह बाहर लॉन में लौट आते हैं।

"यहाँ हर तरह का आराम है" आर्ने की पत्नी कहती हैं। "बस, एक ही परेशानी है... वह है... वक्त-बेवक्त उड़ने विमानों का शोर।"

"यहाँ से फोर्नेबु हवाई अड्डा बहुत नजदीक है न!" आर्ने कहते हैं, "इसलिए कभी-कभी शान्ति में बाधा पहुँचती है। यों हमारे यहाँ के हवाई अड्डे रात बारह बजे से प्रात: छह बजे तक बिल्कुल बंद रहते हैं। हवाई जहाज भी उतने नहीं उड़ते-उतरते, जितने फ्रेंकफुर्त, रोम, लंदन या पेरिस में। किन्तु कभी-कभी हवाई-अड्डे के पास रहने की परेशानी तो झेलनी ही पड़ती है...।"

बाहर बैठे-बैठे मुझे कुछ ठण्ड-सी अनुभव होने लगती है। आर्ने अपनी अनुभवी निगाहों से भाँप लेते हैं। अत: भीतर बैठने का आग्रह करते हैं....।

छोटा-सा ऐक्सल इस बार मेरी कुर्सी के पास बैठता है। उसके ठीक सामने एलिजा। वे दोनों अंग्रेजी नहीं जानते। हिंदी जानने का सवाल ही नहीं। और मैं नार्वेजियन भाषा से परिचित नहीं हूँ। अत: अब हमारे बीच बातें हों तो हों कैसे!

"इन सर्दियों में कहाँ गए?" बच्चों से पूछता हूँ। उनकी मम्मी इसका नार्वेजियन में अनुवाद करके समझाती हैं।

एलिजा जो उत्तर देती है उसका अंग्रेजी में अनुवाद करके मुझे बतलाती हैं, "हम लोग लिलि हामेर की तरफ गए थे। वहाँ हमने बर्फ में खूब स्कीइंग की। खूब खेला।"

"लिलि हामेर ही क्यों गए थे? अन्यत्र क्यों नहीं?"

"हमारी दादी रहती हैं वहाँ। मुझे बहुत-बहुत प्यार करती हैं। ऐक्सल को भी। वहाँ पहाड़ भी अच्छे हैं। मम्मी-पापा कहते हैं, स्कीइंग के लिए वह सब से अच्छा स्थान है...।" एलिजा उत्तर देती है।

"और कहाँ गए थे?" पूछता हूँ।

"हामेर भी गए थे।"

"लिलि हामेर और हामेर में क्या अंतर है?"

एलिजा कुछ बतला नहीं पाती। इस पर उसकी माता जी कहती हैं, "नार्वेजियन में लिलि के माने होता है — छोटा! हामेर बड़ा स्थान है। उसी के पास लिलि यानी छोटा हामेर...।"

मैं कुछ रुककर पूछता हूँ, "तुम तो अभी इतनी छोटी हो। क्या स्कीइंग कर लेती हो?"

"हाँ। हाँ" वह चिड़िया की तरह चहककर कहती है, "बर्फ में फिसलना क्या मुश्किल है। इस वर्ष क्रिसमस में पापा ने मुझे और ऐक्सल को उपहार के रूप में पहली स्की दी थी। मैं तो खूब तेज चला लेती हूँ, पर ऐक्सल बार-बार बर्फ में गिर जाता था...।" वह हँसती हुई कहती है तो ऐक्सल थोड़ा-सा झेंप जाता है।

"तुम तो नहीं गिरती न!" मैं मुस्कराता हुआ पूछता हूँ तो एलिजा और भी जोर से खिलखिला कर हँस पड़ती है, "दो-तीन साल में तो मैं मम्मी से भी आगे निकल जाऊँगी। पापा कहते हैं कि स्कीइंग बहुत अच्छा करती हूँ।"

इस बार उसके पापा भी मुस्कराए बिना नहीं रहते।

आर्ने कहते हैं, "हमारे यहाँ एक पुरानी कहावत है — जिस तरह मछली पानी में तैरती है, जिस तरह चिड़िया हवा में उड़ती है, उसी तरह नार्वेजियन भी बर्फ में खेलते हैं....।"

"हाँ, यहाँ बर्फ वास्तव में बहुत पड़ती है। छह महीने तक प्राय: सारा देश बर्फ से ढका ही

रहता है। आप लोगों को परेशानी तो नहीं होती ?'' मैं फिर एलिजा से पूछता हूँ। बच्चों से बतियाना बहुत अच्छा लग रहा है।

''नहीं, नहीं !'' वह हँस पड़ती है। ''जाड़ों में तो बहुत अच्छा लगता है। जाड़ों के खेल भी हमें बहुत पसंद हैं। हम इन्तजार करने रहते हैं। कब जाड़ा आए, कब हम बर्फ में जी भरकर खेलें।''

श्रीमती आर्ने कहती हैं,''उन दिनों एक तो भीड़-भड़क्का अधिक नहीं रहता। होटलों में आराम से जगह मिल जाती है। इसलिए बच्चों के साथ छुट्टियाँ मजे में मना लेते हैं...।''

बर्फ में और क्या-क्या खेल खेलते हैं ?'' मैं ऐक्सल से पूछता हूँ। वह कुछ बोले, उससे पहले एलिजा उत्साह से कहती है, ''हम घोड़े पर चढ़ते हैं। घोड़े के आगे मैं बैठती थी, ऐक्सल पीछे से मेरी पीठ पकड़ लेता था। सच, बड़ा मजा आता था।''

''घोड़े के पाँव बर्फ में धंस नहीं जाते थे ?''

वह हँसी रोक नहीं पाती, ''नहीं, नहीं, हम घोड़े के पाँवों में जूते पहना देते हैं, ताकि वे बर्फ में आसानी से चल सकें...।'' एलिजा कहती है।

उसकी मम्मी इस पर आगे बतलाती हैं, ''स्लेज गाड़ी पर जुतने वाले कुत्तों को भी जूते पहनाए जाते हैं।''

एलिजा फिर अपने स्कूल की पुस्तकें लाकर मुझे दिखलाती है। स्कूल के बारे में बतलाती है। स्कूल के खेलों के बारे में भी।

''सालभर में सब से अच्छा मौसम कौन-सा माना जाता है ?'' पूछता हूँ।

''मई का महीना !'' श्रीमती आर्ने बतलाती हैं।

''आपको भी अच्छा लगता है मई ?'' एलिजा से पूछता हूँ।

वह सिर हिलाती है, ''हाँ, हाँ अंकल हमें बहुत अच्छा लगता है। हमारे देश में 17 मई को राष्ट्रीय-दिवस के रूप में मनाया जाता है।''

''17 मई का क्या महत्व है ?''

श्रीमती आर्ने बतलाती हैं, "17 मई 1814 को नार्वे ने अपना संविधान लागू किया था...।" कुछ रुककर पूछती हैं, "क्या आपके देश में भी ऐसा ही कोई विशेष त्यौहार मनाया जाता है ?"

मैं विस्तार से बतलाता हूँ, 26 जनवरी तथा 15 अगस्त के महत्व के विषय में। "26 जनवरी को गणतंत्र-दिवस का उत्सव हमारे देश में बड़े धूमधाम के साथ मनाया जाता है।"

"बच्चों के भी जुलूस निकलते हैं ?"

"हाँ ! हाँ।"

एलिजा बतलाती है, "17 मई को हम लोग अच्छे-अच्छे कपड़े पहनते हैं — खूब रंग-बिरंगे। जुलूस की शक्ल में राजा की शुभकामनाएँ लेने महल तक जाते हैं। राजा बालकनी पर खड़े हो जाते हैं और हाथ हिला-हिलाकर सबका अभिवादन स्वीकार करते हैं। हम सब अपने-अपने स्कूलों के बैंड-बाजों के साथ निकलते हैं। कालजुआन रोड़ से जुलूस गुजरता है...।"

मैं ऐक्सल की ओर देखता हूँ, "ऐक्सल तो किसी स्कूल में नहीं है, फिर इसके बैंड-बाजे का क्या रहता है ?"

मेरे इस प्रश्न पर सब हँस पड़ते हैं। कहते हैं, "ऐक्सल बिस्कुट के डिब्बे में छेदकर धागा बाँध लेता है। फिर उसे छोटे ढोल की तरह गले में लटकाता है। बड़ी शान से सीना तान कर चलता है घर में। मुँह से ढम्-ढम् की आवाज करता है।"

सब एक साथ फिर हँस पड़ते हैं।

श्रीमती आर्ने इस बीच उठकर चाय बनाने चली जाती हैं। नार्वे में "नौकर" का क्या होता है, कोई नहीं जानता। सबको अपना काम स्वयं करना होता है।

"गर्मियों की छुट्टियाँ कब होती हैं"? पूछता हूँ।

"जून-जुलाई में।"

"आप लोग छुट्टियों में ओस्लो से बाहर नहीं जाते ?"

चित्र 17 — संविधान दिवस : राष्ट्रीय पर्व

"जाते हैं।" आर्ने बतलाते हैं, "हमारे पास अपने "समर हाउस" हैं। फीयोर्ड के पास। प्राय: वहाँ चले जाते हैं। वहाँ सागर का शान्त किनारा है। घने जंगल हैं। वहीं खूब नहाते हैं। मछलियाँ पकड़ते हैं। तैरते हैं। बच्चों के साथ जंगल में मंगल मनाते हैं।"

"गर्मियों में ऊँचे पहाड़ों के अतिरिक्त तो कहीं बर्फ नहीं रहती न ?" मैं जिज्ञासा से पूछता हूँ।

"दक्षिणी नार्वे में तो नहीं... हाँ, उत्तरी भागों में अवश्य रहती है। सबसे उत्तरी हिस्सा तो हमेशा बर्फ से ढँका रहता है...।"

इतने में एलिजा बात काटती हुई कहती है, " मेरी एक सहेली अब हैमरफास्ट में रहती है। यह दूर, सबसे दूर उत्तर का कस्बा है। दुनिया में सबसे उत्तर में। उसका कल पत्र आया था। लिखा था, अभी तक भी बर्फ जमी है।"

आर्ने कहते हैं, "आधी रात का सूरज देखने वहाँ दुनियाभर के लोग आते हैं। एक विचित्र-सी अनुभूति होती है। आधी रात को चमचमाता सूरज देखना, अपने में कम रोमांचकारी अनुभव नहीं।"

कुछ रुककर वह आगे बतलाते हैं, "प्रकृति की लीला भी कितनी निराली है ! आपके यहाँ शाम को सूरज डूबता है। रात होती है — अंधियारा हो जाता है और लोग सो जाते हैं। सुबह सूरज निकलते ही फिर जाग जाते हैं। परन्तु हमारे देश में ऐसा नहीं होता। उजाले-अंधेरे से नहीं, हम घड़ी की सुई के हिसाब से काम करते हैं। गर्मियों में मोटे-मोटे पर्दे खिड़कियों-दरवाजों में लटका देते हैं, ताकि रोशनी से बचे रहें। नींद भलीभाँति आ सके...।"

श्रीमती आर्ने चाय, बिस्कुट, फल मेज़ पर सजा रही हैं और मुस्कराती हुई हमें आमंत्रित कर रही हैं।

गरम-गरम चाय की चुस्कियाँ लेते हुए पूछता हूँ, "गर्मियों में सैलानियों की संख्या बहुत बढ़ जाती होगी।"

"जितनी नार्वे की कुल जनसंख्या है, प्रतिवर्ष उससे भी अधिक सैलानी यहाँ आते हैं। गर्मियों में ओस्लो की भाषा भी बदल जाती है। लोग सडकों, रेस्तराओं, होटलों में भिन्न-भिन्न

भाषाएँ बोलते नजर आते हैं।" वे बड़े उत्साह से बतलाती जाती हैं।

"वर्षभर में सबसे अँधेरा दिन कब होता है?" पूछता हूं।

"जाड़ों में। 22 दिसम्बर की रात सबसे अंधियारी रात मानी जाती है।" श्रीमती आर्ने कहती हैं, "वैसे दिसम्बर का सारा महीना ही अंधेरा होता है।"

"आप दोनों ही नौकरी करते हैं तो फिर क्या घर की समस्या नहीं होती?"

"समस्या तो रहती है। नार्वे में केवल 20 प्रतिशत महिलाएँ, यानी विवाहित महिलाएँ ही बाहर काम पर जा पाती हैं। कभी-कभी डेनमार्क की बहुत-सी लड़कियाँ ओस्लो आदि शहरों में आ जाती हैं। बाहर घूमने-फिरने या तफरीह करने के इरादे से। ये अपना खर्च चलाने के लिए कभी-कभी कहीं काम भी कर लेती हैं। ऐसी ही एक लड़की पिछली बार महीनों तक हमारे यहाँ काम करती रही थी... ?"

"तो भाषा की समस्या नहीं होती?"

"नहीं, नहीं! नार्वेजियन, डेनिश, स्वीडिश — इन तीनों भाषाओं में बड़ी समानता है। इन्हें एक ही परिवार की भाषाएँ भी कह सकते हैं। हमारे दर्शक स्वीडिश दूरदर्शन को उसी तरह से देखते हैं, जैसे अपने देश के दूरदर्शन को।"

"जब डैनिश लड़की नहीं थी, तो किस तरह काम चलाते थे?"

"हमारे आसपास प्राय: ऐसे परिवार होते हैं, जिनमें महिलाएँ पास-पड़ोस के बच्चों को दिन के समय अपने यहाँ रख लेती हैं। उन्हें "डे टाइम मदर" यानी "दिन के वक्त की माँ" कहा जाता है। हम ऐक्सल को उनके यहाँ रख दिया करते थे। ऑफिस से आने के बाद ले जाते थे...।"

"क्या वे बच्चों की देखभाल मुफ्त में किया करते हैं... ?"

"नहीं, नहीं! हम मेहनताना चुकाते हैं।"

हमारे मेजमान ने हमें "सपर" के लिए बुलाया था। "सपर" का अर्थ होता है — रात का, भोजन के बाद का हल्का-फुल्का भोजन। चाय-बिस्कुट आदि!

वह अब पूरा हो चुका है।

यहाँ हमारे देश की तरह ये लोग औपचारिकता नहीं निभाते। निःसंकोच भाव से, जिसे जो पसंद आता है, ले लेता है।

"थोड़ी चाय आप और लेंगे?" श्रीमती आर्ने पूछती हैं।

"यदि आपको कष्ट न हो तो. ।"

वह उठकर चली जाती हैं — चाय का गरम पानी लाने।

ऐक्सल तुतलाता हुआ बतलाता है कि पिछली बर्फ में उसने किस तरह हिम का आदमी बनाया था। कितना बड़ा था वह!

जब क्रिसमस की बातें छिड़ती हैं तो ऐलिजा कहती है कि किस तरह पिछले वर्ष चावल बनाते समय डेगची में एक छिला हुआ बादाम डाल दिया था। यह निश्चित हुआ था कि जिसकी प्लेट में वह बादाम जाएगा, उसे विशेष उपहार मिलेगा।"

"तो किसकी प्लेट में गया वह?"

ऐक्सल अपनी छोटी-छोटी अंगुलियाँ हवा में हिलाता हुआ कहता है, "मेरी!"

मैं हँस पड़ता हूँ, उसका उत्साह देख कर "तो फिर क्या मिला था इनाम में?"

"मम्मी मुझे दो दिन के सप्ताहान्त के अवकाश में डेनमार्क ले गई थीं।"

"वहाँ क्या-क्या खाया?"

"खूब, खूब आइसक्रीम।" वह किलकता हुआ कहता है।

एलिजा और ऐक्सल फिर साँपों के बारे में पूछते हैं। हाथियों के बारे में भी। मोर कैसा रंग-बिरंगा मोहक पक्षी होता है, मैं बतलाता हूँ। एलिजा कहती है कि उसने अपनी नानी के फोटो-अल्बम में एक विशालकाय हाथी का चित्र देखा था। उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ था कि इस विचित्र पशु के दो पूछें होती हैं। मैं तब बतलाता हूँ कि हाथी की पूंछ एक ही होती है। सिर के पासवाला हिस्सा सूँड़ कहलाता है, जिससे पानी पीता है।

रात के ग्यारह बज रहे हैं। पर कहीं अंधेरा नहीं। सुबह का जैसा धुँधलका है।

श्रीमती आर्ने सींयन नगर की हैं। सींयन को विश्वविख्यात नाटककार हैनरिक इब्सन का शहर भी कहते हैं। इब्सन के बारे में बहुत-सी किंवदंतियाँ हैं। कहावतें हैं। बहुत-सी रोचक कहानियाँ हैं। उन्होंने आग्रह किया कि एक बार सींयन की सैर करने अवश्य जाऊँ।

आर्ने को लिलि हामेर से अनुराग है। कहते हैं, "भारत लौटने से पहले वहाँ अवश्य जाएँ। इस वर्ष नोबेल पुरस्कार से सम्मानित लेखिका सीगरी उनसत की जन्म-शताब्दी है. सीगरी लिलि हामेर में ही अपने जीवन के अंतकाल तक रहीं।"

डेरे पर लौटकर सोचता हूँ — पहले किस साहित्यिक तीर्थ की यात्रा करूँ ?

□ □ □

चित्र 18 — नार्विक बंदरगाह

12

सीगरी के घर

कई विश्वविख्यात लेखक पैदा हुए हैं — नार्वे में, जिन्होंने दुनिया में बड़ा कमाया। जिनकी रचानओं के अनुवाद विश्व की अनेक भाषाओं में हुए। इनमें प्रमुख हैं —

ब्योंसन, इब्सन, कुनुट हम्सन, सीगरी उनसत।

इनमें ब्योंसन, हम्सन तथा सीगरी उनसत को नोबेल पुरस्कार भी मिला था। किन्तु इब्सन का नाम, इब्सन का स्थान विश्वसाहित्य में इन से कहीं अधिक ऊँचा है। यद्यपि उन्हें नोबेल सम्मान नहीं मिला।

एक कविता है—

खूब लड़ी मरदानी वह तो झाँसीवाली रानी थी।

सीगरी उनसत भी कुछ-कुछ ऐसी ही थी, दिलेर, साहसी। यद्यपि वह रानी झाँसी की तरह तलवार से नहीं लड़ी, किन्तु कलम से ही लड़कर उसने नाजियों के छक्के छुड़ा दिए थे।

जो काम साहस का, शौर्य का सीगरी ने किया, दुनिया की शायद ही कोई लेखिका कर पाई हो।

एक दिन सुबह-सुबह निकलने की योजना बनती है। हमारे मित्र चावला दम्पती हैं — हरचरण चावला, पूर्णिमा चावला, जो अर्से से नार्वे में रह रहे हैं, हमें अपने साथ ले जाने का कार्यक्रम बनाते हैं। स्वयं लेखक हैं। इतने वर्षों से यहाँ हैं, परन्तु कभी लिलि हामेर नहीं देखा। अपने साथ एक पारिवारिक मित्र इंग्रिड को भी ले लेते हैं। इंग्रिड साहित्य में शोध कर रही है।

ओस्लो से रवाना होते समय धुँधलका-सा लगता है। चारों ओर कुहासा-सा है।

इस बार हम ओस्लो से उत्तर-पूर्व दिशा की ओर बढ़ रहे हैं। यह नार्वे के सबसे समृद्ध क्षेत्रों में गिना जाता है।

"लिलि हामेर कैसी जगह है ?" इंग्रिड से पूछता हूँ।

"सुना तो है कि बहुत अच्छी है। परन्तु उधर कभी जाने का मौका नहीं मिला"। वह उत्तर देती है।

"सीगरी के साहित्य के बारे में... ?"

बहुत अच्छा लिखा है, उन्होंने ! तभी तो नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया था उन्हें।"

सामने सड़क के दाईं ओर एक बोर्ड लगा है। लिखा है — लिलि हामेर सौ किलोमीटर !

सीगरी का जीवन बड़ा संघर्षमय रहा। अनेक दुख झेले उन्होंने। अपने जीवन से निराश होकर आज से ठीक ६३ साल पहले, इसी सड़क से होकर वे लिलि हामेर गईं थीं, शान्ति की तलाश में।" इंग्रिड बतलाती है, "तब उनकी उम्र होगी कोई सैंतीस साल। लिलि हामेर आकर उन्होंने लिखा। खूब जमकर लिखा। सन् 1928 में उन्हें नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ। जिस रचना पर यह सम्मान मिला, वह उन्होंने लिलि हामेर में आकर ही लिखी।"

घने वनों के बीच से गाड़ी गुजर रही है। पूर्वी नार्वे के इस इलाके में देश की सुन्दरतम घाटियाँ हैं ओस्तर दालेन, वाल्ड्रेस, न्युमेदल ! इसी क्षेत्र में सुप्रसिद्ध यूटन हाइमन पर्वत श्रृंखलाएँ हैं,जिनकी दो सौ चोटियाँ दो हजार मीटर से भी अधिक ऊँची हैं। नार्वे का सबसे बड़ा पहाड़ गाल्दी पिग्गेन यहीं स्थित है, जो आल्प्स के उत्तर में स्थित यूरोप का सबसे बड़ा पहाड़

माना जाना है, जिसकी ऊँचाई है — 2469 मीटर।

नार्वे की सबसे बड़ी नदी ग्लोम्मा यहीं से होकर गुजरती है, जिसकी लम्बाई 598 किलोमीटर है. जिसकी सुरम्य घाटियों में लहलहाते खेत हैं। इनारे-किनारे वनों के अंतहीन विस्तार ! तरह-तरह की वनस्पतियाँ। कहते हैं, सारे नार्वे में कुल दो हज़ार तरह के पेड़-पौधे पाए जाते हैं।

अभी कुछ ही किलोमीटर की दूरी तय कर पाते हैं कि बाईं तरफ एक विशाल झील के दर्शन होते हैं। हम उसी के किनारे-किनारे चल रहे हैं।

''इस झील का क्या नाम है ?''

''म्योसा ! यह नार्वे की मीठे पानी की सब से बड़ी झील है।''

''कितनी बड़ी होगी ?'' फिर पूछता हूँ।

''368 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैली है।''

बड़ी-बड़ी नावें चल रही हैं। डीज़ल बोट्स।

किनारे पर हरी, लाल, नीली, पीली नौकाएँ। तट पर अपनी कारें खड़ी करके लोग मज़े से नहा रहे हैं। हर किनारे पर उत्सव का जैसा वातावरण है।

''अभी कुछ देर पहले जिस कस्बे में हम रुके थे, वहीं पर नार्वे का संविधान बनाया गया था।'' इंग्रिड कहती है।

''नार्वे में इंग्लेंड की तरह राजा है। परन्तु शासन चुनी हुई सरकार द्वारा होता है ! प्रधानमंत्री, मंत्री सब होते हैं।'' इंग्रिड कुछ रुककर आगे कहती है।

''वह क्या है ?'' मैं झील पर तैरते स्टीमर की ओर इशारा करता हूँ।

''हाँ, हाँ, यह है ... इस झील में दुनिया का सबसे पुराना ''पैडल-स्टीमर'' जो आज भी चलता है...।''

''अभी भी चलता है ?'' आश्चर्य से कहता हूँ तो वह हँस पड़ती है, ''देखो न ! वह चल तो रहा है ! प्रतिदिन एड्स बोल से हामेर, लिलि हामेर और ग्योविक तक। फिर वहाँ से वापस।''

''इन ढलानों पर लोग जाड़ों में बर्फ के खेलों के लिए आते हैं।'' इंग्रिड बतला रही है,

"यहीं से होकर रेलगाड़ी बर्गन के लिए जाती है। उत्तरी नार्वे के लिए भी।"

इस वर्ष पूरे नार्वे में, नहीं, नहीं, पूरे विश्व में सीगरी की जन्म-शताब्दी मनाई जा रही है। सीगरी जिस मकान में रहती थीं, उनकी पुत्रवधू उसकी देखभाल करती हैं। उसी को सीगरी का संग्रहालय भी कहा जाता है।

ओस्लो से रवाना होने से पहले सीगरी की बहू को सूचना भिजवा दी थी कि हम विदेश से आए हैं। संग्रहालय देखना चाहते हैं। अत : जब तक हम न पहुँचें, संग्रहालय बंद न किया जाए।

बारह बजे संग्रहालय अमूमन बंद हो जाता है।

लिलि हामेर पहुँचते बारह बज रहे होते हैं।

एक सुन्दर-शहर ! ढलान पर बसा। साफ-सुथरा।

"सीगरी का घर कहाँ है ?" पूछते हैं।

"वह रहा, ऊपर !"

सीगरी का घर सचमुच बहुत भव्य है। चारों ओर सुन्दर बगीचा है। पेड़ हैं तरह-तरह के।

मैं सोचता हूँ — शायद इसी के आस-पास वह जगह होगी, जहाँ सन् 1940 में नाजियों से लड़ते-लड़ते सीगरी का बड़ा बेटा ऐंडर्स मारा गया था।

उसी वर्ष सीगरी उत्तरी ध्रुव के बर्फीले इलाके, स्लेज गाड़ियों से पारकर किसी तरह मरती-जीती स्वीडन पहुँची थी। फिर वहाँ से रूस, जापान, अमेरिका ! वहाँ पहुँचकर भी उसने चैन की साँस न ली। हिटलर के विरुद्ध संघर्ष करती रही। दूसरे विश्वयुद्ध की समाप्ति पर ही नार्वे लौट पाई थी।

अब हम उस घर के द्वार पर हैं, जहाँ सीगरी ने अपने जीवन के बहुमूल्य दिन बिताए थे। सीगरी की कर्मभूमि ! तपोभूमि !

सचमुच सीगरी की पुत्रवधू हमारा इंतजार कर रही थीं।

अपना परिचय देती हुई बतलाती हैं, "मेरा पति सीगरी का छोटा बेटा था। सन् 1978

में उसकी मृत्यु हो गई थी। आप जानते ही होंगे, सीगरी के दो ही बेटे थे। बड़ा बेटा ऐंडर्स...।''

सीगरी के दैनिक उपयोग की वस्तुएँ यहाँ उसी तरह रखी गई हैं, जिस तरह सीगरी के जीवनकाल में रखी रहती थीं। मेज, कुर्सी, टाइपराइटर, शीशा। मेज पर बिखरे कागज़। हैंगर पर लटके कपड़े। पुस्तकें।

ऐसा लगता है, सारी वस्तुएँ ज्यों की त्यों हैं। जैसी की तैसी। जैसे सीगरी अभी-अभी उठकर कहीं बाहर की ओर निकली हों। सारा घर, घर का सारा सामान वैसा का वैसा छोड़कर !

''इस कुर्सी पर बैठकर सीगरी धूप सेंका करती थीं'', उनकी पुत्रवधु बतलाती हैं।

''ये सीगरी की पाण्डुलिपियाँ हैं...। सीगरी आत्मप्रचार से कोसों दूर थीं। उनकी अंतिम इच्छा थी कि उनका कभी भी किसी तरह का प्रचार न किया जाए। उनका घर कभी भी संग्रहालय के रूप में न बदला जाए। घर की जो वस्तु जैसी है, उसे वैसी ही रहने दिया जाए।''

कुछ रुककर वह दूसरे कमरे में ले जाती हैं। कहती हैं, ''यहीं पर 10 जून 1949 को सीगरी का देहान्त हुआ था।''

□ □ □

13

ब्योंसन : सोचनेवाली टोपी

सीगरी के घर बेयरबीक से बाहर निकलते हैं। चावला कहते हैं, "यहाँ से पास ही है वह स्थान, जहाँ नार्वे के राष्ट्रकवि ब्योंसन रहा करते थे।"

जिस तरह हमारे देश का राष्ट्रगान "जन गण मन" विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लिखा, उसी तरह नार्वे का राष्ट्रगीत ब्योंसन ने।

ब्योंसन कवि, उपन्यासकार, शिक्षाशास्त्री, कलाकार, अभिनेता ही नहीं, कुशल राजनीतिज्ञ भी थे। उनका जन्म सन् 1832 में हुआ था।

इस समय जिस घर की दिशा में हम बढ़ रहे हैं, उसका निर्माण सन् 1800 में हुआ था। ब्योंसन ने इटली से लौटने के बाद सन् 1870 में इसे खरीदा था।

उनकी अभिनेत्री पत्नी ने स्वयं इस घर की दीवारों को सजाया था।

ब्योंसन का यह घर तनिक ऊँचाई पर स्थित है। इसलिए हल्की-सी चढ़ाई भी चढ़नी पड़ती है हमें।

हमारे साथ एक गाइड है, जो हर बात को बड़ी बारीकी से बतलाती जाती है।

"ब्योंसन ने चौबीस साल की उम्र में पहला उपन्यास लिखा था। 50 साल की उम्र में

चित्र 19 — ब्योंसन का घर

सन की स्वर्णजयन्ती मनाई गई थी। उसी अवसर पर यह सुनहरा फूलदान राजा की ओर से किया गया था।''

हम दूसरे कमरे में प्रवेश करते हैं, ''यह उनका डाइनिंग-रूम था। यहाँ पर, इस कुर्सी बैठ कर ब्योंसन भोजन किया करते थे। उनकी बगल की यह कुर्सी सदैव उनकी पत्नी के ए सुरक्षित रहती थी।'' गाइड रहस्यमय ढंग से हमारी ओर देखती है।

हमें भी जिज्ञासा होती है। वह हमारे कान के पास मुँह लाकर फुसफुसाती है, '' कान से की पत्नी को कम सुनाई पड़ता था...।''

थोड़ी देर चुप रहने के पश्चात वह उसी तरह कहती है, ''जानते हैं, सारे नार्वे में यह ला घर है, जहाँ सबसे पहले बिजली लगी थी। ब्योंसन के पास इतने पैसे नहीं थे। इसलिए होंने लोगों से उधार लिए थे।''

हम कुछ और आगे बढ़ते हैं।

"यह दीवार-घड़ी दो सौ साल पुरानी है। ब्योंसन के पिता ने एक ब्रिटिश नाविक से खरीदी थी।"

हमें सहज ही आश्चर्य होता है कि टिक्-टिक् घड़ी उसी तरह आज भी टिक-टिक् चल रही है।

"दुनिया में कम लोगों को यह रहस्य मालूम होगा कि ब्योंसन और इब्सन समधी थे।"

हमारे सहयात्री पूछते हैं, "क्या मतलब ?"

वह उसी स्वर में बतलाती है, "ब्योंसन ने अपनी पुत्री बेरिग लियोथ का विवाह इब्सन के बेटे सिग्गुर के साथ किया था।"

मुझे यह सुनकर आश्चर्य नहीं होता। भारत में उन दिनों नार्वे के राजदूत टनेंड इब्सन से मैं परिचित था। आने से पहले मिला था। उनकी माँ का नाम बेरिग लियोथ तथा पिता का नाम सिग्गुर इब्सन था।

हम अब ऊपर की मंजिल की ओर बढ़ते हैं।

"यह ब्योंसन का लिखने का कमरा है। यह मेज़, जिस पर ब्योंसन ने विश्वविख्यात रचनाएँ लिखीं। और वह रही टोपी, जिसे "जादुई टोपी" भी कहते हैं...।"

मेज़ पर नीले रंग की एक ऊनी टोपी रखी है।

हम सहज विस्मय से देखते हैं। परन्तु वह अपनी रौ में है। बोलती चली जा रही है. "यह टोपी "थिंकिंग कैप" के नाम से पुकारी जाती है। लिखते समय ब्योंसन इसे पहन लिया करते थे।"

टोपी उठाकर वह मेरे सिर पर रख देती है, "उनका कहना था कि इसे सिर पर रखते ही नए-नए भाव, नए-नए विचार आते चले जाते हैं।"

हम उस टोपी को प्रणाम कर फिर दूसरे कमरे में, प्रवेश करते हैं।

सामने "ब्योंसन पर्वत" का एक विशाल चित्र है। एक पूरा पहाड़ काटकर उसमें ब्योंसन की आकृति अंकित की गई है। है न कलाकार का कमाल !

" ब्योंसन को सन् 1903 में नोबेल पुरस्कार मिला था।"

मेडल सामने रखा है।

अब हम सबसे निचली मंजिल में प्रवेश करते हैं।

पचास लीटर का एक बड़ा-सा गोल डेक रखा है। उसके सामने हमें गाइड ला खड़ा करती है।

"ब्योंसन को बच्चों से बड़ा प्यार था। प्रतिवर्ष देश के स्वाधीनता-दिवस को वे "बाल-दिवस" के रूप में बड़े धूमधाम से मनाया करते थे। उस दिन इस डेक में भरकर चाकलेट बनवाते थे और बच्चों को खूब खिलाते थे।"

हम फिर दूसरे कमरे की ओर मुड़ते हैं।

"यह कमरा तो खाली है!"

गाइड हँस पड़ती है, "इस कमरे को ब्योंसन "सुअर का कमरा" कहा करते थे। जब भी सिगरेट पीनी होती, वे यहीं आकर पीते थे।"

एक अंगीठी के ऊपर बिल्ली का रंगीन रेखा-चित्र है।

"यह क्या है?"

"उनके नटखट पोतों की करामात है।"

पास ही चमड़े का बड़ा-सा थैला लटक रहा है।

"यह क्या?"

"ब्योंसन की प्रतिदिन हज़ारों चिट्ठियाँ आती थीं। इस थैले में भर कर डाकखाने से उनकी चिट्ठियाँ लाई जाती थीं।"

शाम हो रही है।

हम एक साहित्यिक-तीर्थ की यात्रा से लौट पड़ते हैं — फिर ओस्लो की ओर।

□□□

चित्र 20 — बारहसिंघा : चारे की तलाश

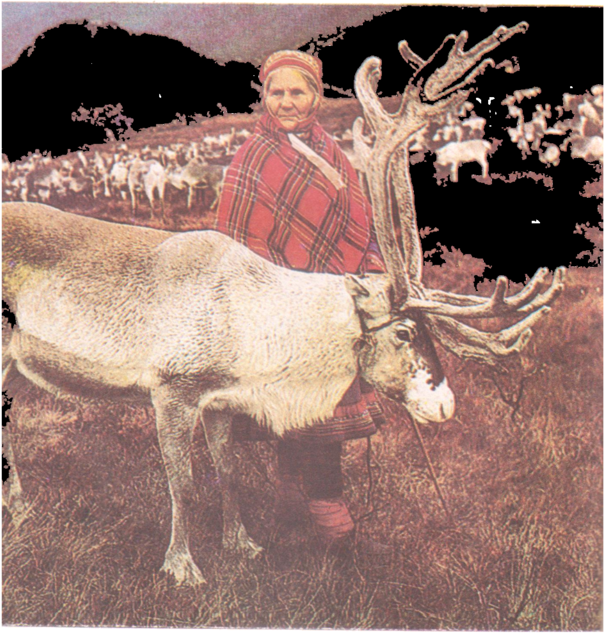

14

जहाँ इब्सन ज़िंदा हैं!

नार्वे के बहुत-से हिस्से देख लिए हैं। अब उत्तरी भाग देखना है।

हम उत्तर जाने की योजना बना ही रहे थे कि ओस्लो विश्वविद्यालय के एक प्रोफेसर अकस्मात एक पार्टी में टकरा जाते हैं. इब्सन पर बहुत काम किया है इन्होंने। कहते हैं — बिना सीयन देखे आपकी यात्रा अधूरी रहेगी।

अत : पहले सीयन का कार्यक्रम बना लेते हैं। डा. फ्लातीन इस कार्य में विशेष सहयोग देते हैं। उन्होंने इसकी भी व्यवस्था करवा दी है कि सीयन रेलवे स्टेशन पर मुझे ए. ई. हालेण्ड मिलेंगे। ये एक नोर्वेजियन दैनिक समाचार पत्र ''वार्डेन'' (संदेश) के प्रधान सम्पादक हैं तथा 'इण्टरनेशनल इब्सन सोसाइटी' के अध्यक्ष भी। वे स्वयं मुझे पहचान लेंगे। क्योंकि कुर्ता, पाजामा पहने या भारतीय वस्त्रों में वहाँ एकमात्र यात्री हूँगा।

जुलाई की 29 तारीख है। सुबह के नौ बजकर पच्चीस मिनट हो रहे हैं। ट्रेन दक्षिण पश्चिम की दिशा में रवाना हो रही है।

हमारे यहाँ की रेलगाड़ियों की तरह यहाँ भीड़-भड़क्का नहीं है। साफ-सुथरी सीटें हैं। झक सफेद। दूध के झाग-जैसी। ऐसी ही आराम देह सीटें हवाईजहाज में होती हैं। बल्कि यों

कहना चाहिए कि उनसे भी अच्छी है, खुली-खुली। पाँव फैलाने के लिए भी पर्याप्त स्थान है।

इब्सन पर लिखी एक पुस्तक मेरे पास है। कुछ अन्य पत्र-पत्रिकाएँ भी। समय कट जाएगा। खिड़की के पासवाली सीट पर बैठा हूँ। बाहर के मनोरम दृश्य भी देखता चलूँगा। ये दृश्य फिर कब दिखलाई देंगे, जीवन में! इसलिए लालची बच्चे की तरह सब कुछ समेट लेना चाहता हूँ।

मेरी सीट के ठीक सामनेवाली सीट पर मेरी ओर मुँह किए एक अधेड़ सज्जन बैठे हैं। झबरेली दाढ़ी है। वैसे ही बिखरे-बिखरे बाल। बातों-बातों में पता चलता है कि पत्रकार हैं

तो समय अच्छा कटेगा।

मुझे प्रसन्नता होती है कहीं।

नार्वे की राजनीति के बारे में बतलाते हैं कि यहाँ आए दिन दल नहीं बदलते लोग। अपने चुनाव क्षेत्र में खूब काम करते हैं। उसी के आधार पर चुनाव लड़ते हैं।

यद्यपि यहाँ समाजवाद नहीं है, फिर भी किसी भी समाजवादी देश के मुकाबले अमीर और गरीब के बीच यहाँ कम चौड़ी खाई है। जिसका वेतन जितना अधिक होता है, उसे टैक्स भी उतना ही अधिक चुकाना पड़ता है। इसलिए अंत में वेतन अमूमन समान रह जाता है।

यहाँ लोग करों यानी टैक्सों की चोरी नहीं करते और कर भी नहीं पाते,क्योंकि हर काम कंप्यूटर से होता है। कंप्यूटरों में हर व्यक्ति के नाम का खाता होता है। बटन दबाया नहीं कि पूरे जीवन का खाका सामने।

''इतने दिनों में एक विदेशी होते हुए मैंने पाया कि यहाँ के लोग अन्य देशों के लोगों के मुकाबले में अधिक ईमानदार हैं। अधिक मानवीय दृष्टिकोण रखते हैं। अधिक विश्वसनीय हैं। जो कहते हैं, वही करते हैं।''

मेरे इस कथन पर वे पत्रकार-बंधु किंचित मुस्कराते हैं ''हमारा देश कल्याणकारी राज्य है। जो भी है, सब जनता की भलाई के लिए है।'' कुछ रुककर वे कहते हैं, ''हेराफेरी आदमी क्यों करेगा ? जब बच्चा पैदा होने वाला होता है, तबसे सरकार विशेष सहायता शुरू कर देती

है। बच्चे के लालन-पालन में भी सहयोग देती है। बच्चा जब स्कूल पढ़ने जाता है, पढ़ाई के लिए बच्चे को कर्जा देती है, जिसे वह बाद के जीवन में जब चाहे आसान किस्तों पर चुका सकता है। छुट्टियों में काम करके अधिकांश छात्र तभी अपना ऋण चुका भी डालते हैं। बीमार होने पर सरकार इलाज की समुचित व्यवस्था करती है। नौकरी देना सरकार का दायित्व है। जब तक नौकरी नहीं मिलती, सरकार भत्ता देती है। सेवामुक्त होने के बाद पेंशन की व्यवस्था करती है। लोग खाते-पीते, मौज मनाते हैं। फिर अधिक सम्पत्ति किसके लिए जोड़ें ? झूठ किसके लिए बोलें? सब आत्मनिर्भर रहते हैं... संतुष्ट...।''

''तब तो यहाँ के लोगों की उम्र लम्बी होती होगी। जब चिन्ताएँ न हों, तो आधे संकट वैसे ही दूर हो जाते हैं।'' मैं कहता हूँ।

''आपने रेलों, ट्रामों और बसों में देखा नहीं, 90-100 साल के वृद्ध आम तौर से मिल जाते हैं। यहाँ रिटायरमेंट की उम्र 68 वर्ष है, जिसे अब 70 करने जा रहे हैं।''

''तब चोरियाँ भी कम होती होगीं'' मैं कह ही रहा होता हूँ कि वे चट से बोल पड़ते हैं, '' आपने देखा ही होगा, यहाँ के लोग दूसरों पर आसानी से विश्वास कर लेते हैं। चोरियाँ भी अन्य देशों की अपेक्षा कम ही होती हैं। लोग हेराफेरी क्यों करने लगे ? जब सारे काम सचाई से हो जाते हैं। यही कारण है कि हमारे देश में मिलावट क्या होती है, लोग नहीं जानते...।''

मैं देखता हूँ, गाड़ी किसी स्टेशन पर रुक गई है। शायद स्टेशन का नाम सेंड फीयोर्ड है। डिब्बे में ही एक ट्राली घूम रही है। मैं चाय ले लेता हूँ। मित्र अपने साथ फलों के रस की बड़ी बोतल लाए हैं। बड़े निश्चिंत भाव से मुँह पर लगा लेते हैं।

बातों का सिलसिला आगे चलता है। वे बतलाते हैं, ''नार्वे के लोगों ने दूसरे विश्वयुद्ध में बड़े संकट सहे हैं। इसलिए वे युद्ध-विरोधी हैं। शान्ति, विश्वशान्ति की बातें करते हैं।''

''यहाँ की आय के साधन क्या हैं ?'' पूछता हूँ।

''यहाँ समुद्र में से बहुत बड़ी मात्रा में पेट्रोलियम निकाला जाता है। उत्तर का सागरीय तट पेट्रोलियम के भण्डारों से भरा हुआ है। यह नार्वे की आय का प्रमुख आधार है। यों नार्वे जहाजों

का निर्यात करता है। लकड़ी पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होती है। उसे भी बेचता है। नार्वे में जल-विद्युत के बहुत अधिक साधन हैं। यहाँ से स्वीडन को बिजली भी निर्यात की जाती है...।'' वे उत्तर देते हैं।

हमारी बातें चल रही हैं। और सीयन भी पास आता चला जा रहा है।

सीयन वह शहर है, जहाँ अबसे लगभग 154 वर्ष पूर्व 20 मार्च 1828 को हेनरिक इब्सन का जन्म हुआ था। इब्सन के जीवन के अनेक महत्वपूर्ण वर्ष इसी शहर की गलियों में बीते थे।

सीयन में

कुछ ही समय पश्चात गाड़ी की गति धीमी होने लगती है। धीमी और धीमी।

सामने बोर्ड दीख रहा है—

सीयन !

पत्रकार मित्र से हाथ मिलाकर मैं उतरने लगता हूँ। अब मुझे उस व्यक्ति की तलाश है, जो मेरी तलाश में यहाँ खड़ा होगा। जो मुझे पहचान लेगा, मेरे कपड़ों की वजह से।

मैं अभी उतर ही रहा होता हूँ कि एक लम्बे-से, इकहरे शरीर वाले फुर्तीले अधेड़ उम्र के व्यक्ति मेरी ओर लपक कर आते हैं। नार्वेजियन उच्चारण में अंग्रेजी में बोलते हैं, ''आप ही हैं योशी ?''

मैं स्वीकृति में सिर हिलाता हूँ तो वे हाथ आगे बढ़ाते हैं, ''मैं हालेंड हूँ। वाडैन पत्र का संपादक ''

वे बड़ी आत्मीयता से मिलते हैं। उनकी सहृदयता मुझे कहीं बहुत अच्छी लगती है। छू जाती है।

सबसे पहले इब्सन के घर की ओर चलते हैं। हालेंड महाशय के पास अपनी कार है। वे स्वयं चला रहे हैं।

गाड़ी तेज रफ्तार से चल रही है, और वे बोलते चले जा रहे हैं, ''जब इब्सन का जन्म हुआ था, यह छोटा-सा कस्बा था। आबादी होगी, कोई दो हजार। अब इसकी आबादी है 4·5 हजार से भी ऊपर। जिस घर में इब्सन का जन्म हुआ, वह बीच कस्बे में था। तब कस्बे में

लकड़ी चीरने की अनेक मशीनों का शोर था। पास ही चार प्राकृतिक झरने भी थे, उनका शोर कुछ कम न होता था।"

वे आगे बतलाते हैं, "इब्सन का परिवार बड़ा सम्पन्न था। बड़ा शानदार घर था। और भी कई भव्य इमारतें थीं जो 1886 की आग में जलकर राख हो गई थीं। किन्तु इस सारे शहर के चप्पे-चप्पे में आज भी इब्सन की यादें समाई हुई हैं...।"

अब हम एक सफेद बंगले की ओर बढ़ते हैं जो अन्य बंगलों से कुछ भिन्न है। नाम है — "इब्सन वेनस्टाप।"

"यही है वह घर जहाँ इब्सन ने अपने बचपन के सुनहरे दिन बिताए थे। यहाँ वे छह वर्ष की उम्र से चौदह वर्ष तक रहे थे...।" हालेंड बतलाते हैं।

"इब्सन को बचपन से ही नाटकों का शौक रहा। अभी वह छोटे ही थे कि स्वयं ही लिखकर नाटक जैसा कुछ तैयार कर लेते थे। घर के सदस्यों और नौकर-चाकरों के सहयोग से नाटक खेलते थे। घर के बाहर, बगलवाले आँगन में, जहाँ इस समय हम खड़े हैं, यही स्थल उनका रंगमंच था। यह खिड़की, जो इस समय बंद है, वहाँ बैठकर बालक इब्सन नाटकों का निर्देशन किया करते थे।"

"यह घर तो नया-नया-सा लग रहा है।" पूछता हूँ।

"नया कहाँ? 180 साल से भी पुराना है। शायद सन् 1800 में बना था।" हालेंड उत्तर देते हैं।

काठ का फर्श है।

अभी तक भी अधजली मोमबत्तियाँ रखी हैं।

बिजली तब होगी नहीं। इसलिए झाड़-फानूस पर भी मोमबत्तियाँ हैं"

काठ की मेज पर सफेद मेजपोश!

दीवारों पर रंगीन चित्र हैं— उसी जमाने के।

हम रसोईघर की तरफ बढ़ते हैं। अभी तक भी केतली, चम्मच, प्याले, प्लेटें — सब ज्यों की त्यों धरी हैं।

दर्पण भी रखा है, जिसका उपयोग इब्सन किया करते थे।

"रसोई घर का रंग इतना नीला क्यों है ?" गाइड से पूछते हैं तो उत्तर मिलता है, "मक्खियों से बचाव के लिए।"

काठ की सीढ़ियाँ चढ़कर हम ऊपरवाले कमरे में पहुँचते हैं।

"इसी कमरे में बैठकर इब्सन को "जंगली बनख" नामक नाटक लिखने की प्रेरणा मिली थी।"

वहाँ छोटे-बड़े, तरह-तरह के चर्खे रखे हुए हैं।

"इब्सन की माताजी तथा दादीजी इन्हें चलाया करती थीं।"

हम अब एक छोटे-से कमरे में प्रवेश करते हैं — "यह इब्सन का सोने का कमरा है।"

सफेद चारपाई।

काढ़ी हुई सफेद चादर।

मेज़ बहुत पुराने ढंग की। पुराने रंग की।

दीवार पर इब्सन के परिवार का चार्ट टंगा है। लिखा है — इब्सन का वंशवृक्ष !

"इस बड़े कमरे में बालक इब्सन द्वारा नाटकों की रिहर्सल की जाती थी।" घर देखकर बाहर आते हैं।

गर्मी लग रही है बहुत।

मैं देख रहा हूँ, गेहूँ की बालियाँ पक चुकी हैं। दाहिनी ओर का रास्ता गाँवों की ओर जा रहा है। अधिक भीड़ नहीं, न कहीं शोरगुल ही।

"सीयन का क्या अर्थ होता है ?" हालेंड महोदय से पूछता हूँ।

"वह स्थान जहाँ पानी फैला रहता है।"

इन्हीं गलियों में इब्सन का बाल्यकाल बीता था। इब्सन के पिता कुनुट इब्सन व्यापारी थे। व्यापार के साथ-साथ छोटे-मोटे कारखाने भी चलाते थे।

किन्तु धीरे-धीरे व्यापार धीमा पड़ गया। एक समय वह भी आया, जब वेनस्टापवाले

घर के अलावा और कुछ भी न बचा।

"इब्सन के जीवन के अनेक महत्वपूर्ण वर्ष यूरोप प्रवास में बीते। अपने अनेक विश्वप्रसिद्ध नाटक उन्होंने वहीं लिखे।" हालेण्ड जानकारी देते हैं।

सामने इब्सन की आदमकद प्रतिमा है।

"इब्सन की मृत्यु के बाद सीयन शहर को उनके स्मारक के रूप में विकसित किया गया। यहाँ "इब्सन थियेटर" "इब्सन लायब्रेरी" "इब्सन रोड", "इब्सन पार्क" सारा का सारा वातावरण ही है इब्सनमय।"

हम "इब्सन संग्रहालय" देखने जा रहे हैं।

हालेंड इब्सन के बारे में बतलाते चले जा रहे हैं,"जिस घर में इब्सन का जन्म हुआ था वह 1886 के अग्निकांड में जल गया था। वहाँ केवल 4 वर्ष तक इब्सन रहे।"

एक दरवाजे पर रंगीन मोटी पेन्सिलों से एक बंदर की जैसी आकृति खिंची है।

"यह क्या है?" उत्सुकता से पूछता हूँ।

स्मारक की गाइड रेंडी बतलाती हैं, "इब्सन नाटककार ही नहीं, चित्रकार भी थे।बचपन में अपने छोटे भाई-बहनों को बहलाने के लिए दीवारों-दरवाजों पर कभी-कभी चित्रकारी भी कर दिया करते थे। यह चित्र तभी का है...।"

मैं हिसाब लगाता हूँ, डेढ़ सौ साल से कुछ अधिक ही अर्सा हुआ होगा — यह चित्र बनाए।

एक स्थान पर इब्सन के आकार की, इब्सन जैसी ही एक मानव आकृति बनी है। दूर से देखने पर ठीक इब्सन ही लगती है, इब्सन जैसी नहीं।

"यह क्या है?"

"इब्सन का "घोस्ट" कहते हैं इसे!" गाइड बतलाती है।

सीयन निवासियों को गर्व है कि इब्सन का जन्म उनके शहर में हुआ था।

"इब्सन ने यह शहर क्यों छोड़ा था?" मैं लौटते समय हालेंड से पूछता हूँ।

वे बतलाते हैं :

"इब्सन ने इस विषय में अपनी पुत्रवधू को एक बार लिखा था — आर्थिक रूप से परि-

वार बहुत गरीब हो गया था। वही शहर, जहाँ बड़े शान-शौकत से रहे, अब गरीबी के कारण पराया-पराया-सा लगने लगा था। कस्बे के लोग तरह-तरह की बातें किया करते थे, जिससे मन उचट गया। केवल 15 वर्ष की उम्र में ही यह लगने लगा कि इस शहर से निकल भागने में ही अब खैर है। फिर रोजी-रोटी की भी तो समस्या थी। यही सब सोचकर 27 दिसम्बर 1843 को मैं निकल पड़ा एक नई दुनिया की तलाश में।''

वे आगे बतलाते हैं — ''यहाँ की यादें। यहाँ के अनुभव उन्होंने अपने नाटकों — ''जंगली बतख'' तथा ''समाज के स्तम्भों'' में चित्रित किए हैं।''

''हलो ममी'' का लेखक

उत्तरी नार्वे जाने से पहले कुछ नार्वेजियन लेखकों से भी मिलने का कार्यक्रम बन जाता है।

सबसे पहले पाल ब्राखे से मिलता हूँ। 60 वर्ष से अधिक उम्र है, परन्तु देखने में इतने लगते नहीं। बड़े प्रगतिशील विचारों के हैं। आमलोगों के हिमायती।

कालजुहान के एक रेस्तरां में मुलाकात होती है। पाल ब्राखे नार्वे के अग्रणी लेखकों की श्रेणी में आते हैं।

नार्वेजियन साहित्य पर बातें होती हैं पहले, फिर भारतीय साहित्य पर।

उन्होंने रवीन्द्र नाथ ठाकुर की विख्यात कृति ''गीतांजलि'' पढ़ी है। हिन्दी कविताओं के कुछ अनुवाद भी।

''भारत गए हैं कभी ?'' पूछता हूँ।

''जी हाँ, बहुत वर्ष पहले। मैसूर के अनेक स्थानों की यात्रा की। वहाँ का यात्रा-वर्णन भी लिखा, जो नार्वेजियन पाठकों ने पसंद किया। पुस्तक के कई संस्करण अब तक प्रकाशित हो चुके हैं।''

पाल बड़े सरल स्वभाव के हैं।

दूसरे दिन तरुण लेखक औस्कर स्टाइन वियर लिक्के से मिलते हैं। औस्कर की अब तक केवल 5-6 पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। किन्तु इनसे इतनी रायल्टी मिल जाती है कि उन्हें

फिर नौकरी करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। हाँ, कभी कुछ कमी रह जाती है तो "लेखक-यूनियन" उसे पूरा कर देती है।

वे बतलाते हैं कि पुस्तक छपते ही वहाँ लेखकों को पूरी-पूरी रायल्टी पहले दे दी जाती है।

"बच्चों के लिए भी मैंने कविताएँ लिखी हैं। हमारे देश में बच्चों के लालन-पालन पर, बच्चों की शिक्षा-दीक्षा पर सबसे अधिक महत्व दिया जाता है," वे आगे बतलाते हैं। "बच्चों के खेल-कूद पर भी पूरा-पूरा ध्यान दिया जाता है। बच्चों के लेखकों की प्रतिष्ठा अन्य विधाओं के लेखकों से अधिक है।"

"आपको किस बाल-पुस्तक को बच्चों ने बहुत पसन्द किया?"

"हलो, ममी" को।" वे उत्तर देते हैं।

"आपकी इसकी कई कविताएँ बच्चे गाते मिल मिलेंगे," श्रीमती औस्कर कहती हैं।

वे बच्चों के लिए लिखी अपनी कुछ कविताएँ सुनाते हैं बड़े विभोर होकर।

उनके दोनों बच्चे भी मंत्रमुग्ध भाव से सुन रहे हैं।

☐ ☐ ☐

चित्र 21 — बर्फ में उत्सव

15

परीलोक की ओर

अगस्त के अंतिम दिन हैं।

हम लोग ''परी-लोक'' की यात्रा का कार्यक्रम बना रहे हैं — सचमुच इस बार जा रहे हैं एक जादुई संसार में। धुर उत्तर की दिशा में।

''नार्वे'' का अर्थ होता है — ''नार्थवे'' यानी उत्तरी रास्ता। हम इस उत्तरी रास्ते के भी उत्तर में पहुँचने की योजना बना रहे हैं जहाँ इस समय, यानी गर्मियों के मौसम में भी चारों ओर बर्फ होगी। जहाँ सफेद भालू होंगे। जहाँ कुत्तों के द्वारा खींची जाने वाली स्लेज गाड़ियाँ होंगी। जहाँ घोड़ों के पाँवों पर जूते होंगे। और जूते पहनकर वे बर्फ में दौड़ रहे होंगे। जहाँ कुत्तों ने भी जूते पहने होंगे। वे भी बर्फीले मार्गों पर सरपट भाग रहे होंगे। जहाँ रेंडियरों यानी बाहरसिंगों के झुंड-के-झुंड चौकड़ी भरते हुए दिखलाई देंगे। जहाँ समुद्र में तेल निकाला जा रहा होगा। जहाँ ह्वेल मछलियाँ अपना घर बसा कर रहती हैं। उस उत्तर ध्रुव की दिशा में हमें जाना है जिसे नार्वे के लोग ''लैप लैंड'' यानी ''लैप लोगों का देश'' नाम से संबोधित करते हैं। लैप लोगों को ही रूसी टुंड्रा प्रदेश में ''एस्कीमो'' तथा कनाडा में ''सैमोआइड्स'' नाम से भी जानते हैं।

ये लोग आज भी रेंडियर पालते हैं। बर्फीले घरों में रहते हैं। अपना एक अलग ढंग का

जीवन जीते हैं। अपनी एक अलग भाषा बोलते हैं।

हमें सफेद रीछों के प्रदेश में जाना है, इसकी मन में खुशी है।

यह यात्रा हम हवाईजहाज से नहीं, बल्कि रेलगाड़ी से तय करना चाहते हैं ताकि इस संपूर्ण क्षेत्र को जितना अधिक निकट से देखना सम्भव हो, देख पाएँ।

तो हमें उत्तरी दिशा की ओर बढ़ने वाली रेलगाड़ी की प्रतीक्षा है। टिकट हम पहले से ही खरीद लेते हैं।

हमारी छुक्-छुक् रेलगाड़ी ध्रुव प्रदेश की दिशा में बढ़ने लगती है। क्षमा कीजिएगा, यह हमारे यहाँ की जैसी "छुक्-छुक्" गाड़ी नहीं है, बल्कि रस्सी की तरह सरकती रेलगाड़ी कह सकते हैं इसे। बिजली से चलती है, बिजली की गति से। खुट्-खुट् खट्-खट् की आवाज नहीं होती, बल्कि सर्र से निकल भागती है।

यहाँ के लोग अब नहीं जानते कि कोयले और भाप से चलनेवाली रेलगाड़ियाँ कैसी होती हैं ? किस तरह से चलती हैं ? बच्चे केवल पुस्तकों में पढ़ते हैं — कि किसी जमाने में हमारे यहाँ कोयले से चलनेवाली रेलगाड़ियाँ भी हुआ करती थीं...।

वास्तव में यहाँ की रेलगाड़ियों की पटरियों के बीच जोड़ने के स्थान पर दूरी नहीं के बराबर होती है, इसलिए गाड़ियाँ शोरगुल न मचाती हुए धीरे-से खिसककर भागने लगती हैं। पटरियों पर उड़ती हुई।

दोपहर का समय है। यहाँ रेल के स्टशनों पर कुली तो होते नहीं। इसलिए अपना सारा सामान खुद ही उठाकर ले जाना पड़ता है। हाँ, ट्रालियाँ अवश्य होती हैं, बोझा लाने-ले जाने के लिए परन्तु श्रम तो सारा स्वयं को ही करना पड़ता है।

गाड़ी उसी दिशा में जा रही है, जिस दिशा में हामेर है। लिलि हामेर है।

म्योसा झील के किनारे-किनारे पानी को छूती हुई गाड़ी चल रही है। लहरें लेती झील।दौड़ती रेलगाड़ी, कल्पनालोक में उड़ते हुए यात्री। स्वर्ग जैसा दृश्य दीखने लगता है। ठण्डी हवाओं के झोंके आ रहे हैं। आसमान में कहीं रंग-बिरंगे बादल दौड़ रहे हैं। दौड़े चले जा रहे हैं।

पता नहीं, कितने पहाड़, कितनी घाटियाँ, कितने पठार पार करने हैं अभी। जगह-जगह सुरंगें बनी हैं। पहाड़ के पेट में घुसकर रेलगाड़ी दूसरे ही क्षण दूसरे पहाड़ के निकट पहुँच जाती है।

सुरंगें बनाने में नार्वे निवासियों का कोई जवाब नहीं। कठोर चट्टानी पर्वतों को छेदकर पता नहीं कैसे मीलों लम्बी सुरंगें बना लेते हैं! इन्हें काटना आसान नहीं। वज्र जैसी कठोर हैं। इन्हें बनाना अवश्य कठिन है, परन्तु एक बार बना लेने पर फिर सदियों तक कहीं कोई कठिनाई नहीं होती। न ये टूटती हैं, न घसती हैं। जैसी एक बार बना दी, सदा के लिए वैसी ही रहती है।

म्योसा के किनारे-किनारे

रास्ते में समय बिताने के लिए बहुत-सी पुस्तकें ले आया हूँ अपने साथ।

उन्हें खोलकर कभी-कभी कुछ पढ़ने का भी प्रयास करता हूँ।

एक पुस्तक में लिखा है —

10 हजार वर्ष पूर्व सबसे पहले आदमी के पाँव नार्वे की धरती पर पड़े थे। यानी मानव का नार्वे की भूमि से 10 हजार साल पुराना संबंध है।

लेप्स यानी सामी लोग उत्तरी ध्रुव प्रदेश के मूल निवासी हैं।

इनकी भाषा, संस्कृति, रहन-सहन, जीवन-दर्शन — हर दृष्टि से भिन्न है।

इनकी संख्या अब केवल 20 हजार रह गई है।

दूसरा अध्याय खोलता हूँ। लिखा है —

एक लाख एक हजार विदेशी प्रवासी रह रहे हैं नार्वे में।

एशियाई उनत्तीस प्रतिशत।

नार्डिक बत्तीस प्रतिशत।

शेष यूरोपीय इकत्तीस प्रतिशत।

अफ्रीकी तीन प्रतिशत।

आस्ट्रेलियाई छह प्रतिशत।

नार्वे में जहाँ पाकिस्तानी प्रवासियों की संख्या बीस-बाइस हजार है वहाँ, भारतीयों की बीस-बाइस सौ से अधिक नहीं।

नार्वे निवासी उदार स्वभाव के हैं। सबकी सहायता में विश्वास रखते हैं। इसलिए अनेक वियतनामी शरणार्थियों को भी इन्होंने उदारतापूर्वक अपने यहाँ बसा लिया है। अनेक ईरानियों को भी। श्रीलंका से गए शरणार्थियों की संख्या भी अब हजार से ऊपर पहुँच रही हैं। बंगलादेश के शरणार्थी भी यहाँ आसानी से देखने को मिल जाते हैं। अफगान भी।

नार्वे, स्वीडन, डेनमार्क, फिनलैंड तथा आयसलैंड — इन पाँच देशों को "स्केण्डेनेविया" नाम से संबोधित करते हैं। इनकी कुल भूमि का चालीस प्रतिशत क्षेत्र है — नार्वे।

स्वीडन, फिनलैंड तथा सोवियत संघ की सीमाएँ नार्वे से लगती हैं।

कुल सीमा 2531 किलोमीटर लंबी है...।

"आप कहाँ पुस्तकों में खो गए ?" मेरे साथ बैठे यात्री कहते हैं, "देखिए, बादलों के साथ-साथ भागते ये सीगल पक्षी कितने सुंदर लग रहे हैं! लगता है, बादल, पक्षी, सूर्य — तीनों एक ही चित्र के तीन हिस्से हैं।"

मैं यों ही पुस्तक बंदकर खिड़की से बाहर देखने लगता हूँ। सचमुच अद्‌भुत दृश्य है।

"म्योसा झील में तैरने का अपना सुख है। क्या आप म्योसा में तैरे हैं ?" वे पूछते हैं।

"म्योसा में तैरा तो नहीं, हाँ, पिछली बार सन् 1982 में जब लिलि हामेर आया था, तब छुआ अवश्य था। एकदम बर्फ की तरह ठंडा लगा था जल। डंक मारता हुआ जैसा।"

मेरे इस उत्तर से सहयात्री हँस पड़ते हैं, "म्योसा का पानी ठण्डा कहाँ है?" वे और जोर से हँसने लगते हैं, "तब तो उत्तरी ध्रुव प्रदेश के ठण्डे जल की आप कल्पना भी नहीं कर सकते।"

लिलि हामेर स्टेशन पर क्षणभर के लिए गाड़ी रुकती है। और फिर उसी गति से निकल भागती है। इसे सारा दिन, सारी रात इसी तरह निरंतर यात्रा करनी है, तब कहीं पहुँच

पाएँगे अपनी मंज़िल तक।

हमारी मंजिल रेल की मंजिल से आगे है, बहुत-बहुत आगे।

लिलि हामेर के बाद पता नहीं कब म्योसा झील पीछे छूटी! अब एकदम पर्वतीय प्रदेश है। एक सुरंग से दूसरी सुरंग और दूसरी से तीसरी — रेल सनसनाती हुई भाग रही है। बिना साँस लिए।

अब यात्रा का एक और रोमांचक अध्याय आरंभ हो रहा है।

सामने बर्फीले पहाड़ हैं।

पानी बरस रहा है।

कहीं-कहीं कुहासा है।

सूरज की पीली, ठण्डी किरणें लुका-छिपी कर रही हैं।

सहसा पहाड़ के ऊपर सीना ताने रेल खड़ी हो जाती है। इतनी ऊँचाई पर, साँप की तरह फिसलती हुई चढ़ गई है। रोमांच हो आता है।

यह रेलवे-स्टेशन डोम्बास है।

बड़ा नहीं है, फिर भी महत्वपूर्ण है। पहाड़ के ऊपर होने के कारण सामने की पहाड़ियाँ या उसके पीछे बर्फीले पहाड़ या हरी-भरी गहरी घाटियाँ — सारा माहौल डरावना-सा लग रहा है।

रेंडियरों के पास

रेलगाड़ी अब उत्तर-पश्चिम की ओर नहीं, ठीक उत्तर की दिशा में मुड़ने लगती है।

यहाँ बस्तियाँ और भी कम दिखलाई दे रही हैं, जंगल अधिक हैं। दूर-दूर तक फैले भयावने जंगल।

देवदार के छोटे-छोटे पौधे। प्लांटेशन।

अभी कुछ ही मिनटों की दूरी तय कर पाते हैं कि लगता है, जैसे पहाड़ों के ऊपर कोई विशाल, विस्तृत, उजाड़ मैदान है। धरती की छत पर रेल चल रही है — कहीं वीराने की

तरफ! पता नहीं किस लोक में! कहाँ!

यह पठार-सा है।

पेड़-पौधे बहुत कम हैं। घास अधिक।

चट्टानी धरती भी साफ दीख रही है।

रेल की पटरियों से सौ-दो सौ मीटर की दूरी पर, जगह-जगह लकड़ी के फट्टों की लंबी-बाड़-सी चली गई है।

"यह क्या है?"

"रेंडियरों का प्रदेश यहाँ से आरंभ हो गया है?" वे बतलाते हैं, "वे हजारों के झुण्ड में बेतहाशा भागते हुए आते हैं। कभी-कभी चलती हुई रेलगाड़ी से टकरा पड़ते हैं तो भीषण दुर्घटना हो जाती है। उसी के बचाव के लिए इन पट्टियों की दीवारें खड़ी की गई हैं।"

इस ऊँचाई पर, यानी धरती की इस छत पर एक बहुत बड़ी झील दिखलाई दे रही है। और असंख्य रेंडियर उस झील में पानी पीते हुए।

पिघली बर्फ का यह पानी पारे की तरह चमक रहा है — शाम के धुँधलके में।

रेल की पटरियों से कुछ ही दूरी पर मोटर मार्ग है, जिससे होकर अनेक कारें दौड़ती दिखलाई दे रही हैं, जैसे साँझ से पहले मंजिल पर पहुँचने की उतावली में हों।

इक्के-दुक्के मकान।

झील के किनारे ग्रीष्म-आवास जैसे भी कुछ।

□ □ □

16

धुर ध्रुव प्रदेश में

अब लगता है स्वर्ग की ऊँचाई से उतरकर हम कहीं ढलान की तरफ बढ़ रहे हैं।

घास की एक नई किस्म दीख रही है। सफेद और बैंगनी रंग के फूल।

पतझड़ के कारण पेड़ों पर एक तरह का हल्दी का जैसा पीलापन झलक रहा है।

यहां गर्मियां बीतते ही पतझड़ शुरू हो जाता है।

रिंगेबू, विंसट्रा, हयार किन्न, ओपदाल आदि स्टेशन हम पार कर चुके हैं। धुंधलका है, सांझ का जैसा अहसास। मेरे आश्चर्य की सीमा नहीं रहती यह देखकर कि ज्यों-ज्यों हम उत्तर की ओर बढ़ रहे हैं, प्रकाश भी बढ़ता चला जा रहा है।

हमारी रेलगाड़ी अब पहाड़ों के ऊपर,पठारी मार्गों में नहीं, निचली घाटियों में से होकर गुजर रही है, आसमान को छूते ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों के बीच दरारों में से।

पहाड़ों की चोटियों पर से बर्फ पिघल रही है इसलिए ढलान की ओर अनगिनत झरने दिखलाई दे रहे हैं। झरने ही झरने!

कहीं सड़क के किनारे हरे-भरे चरागाह जैसे भी हैं। जहां लंबे बालोंवाली भेड़ें दिखलाई दे रही हैं।

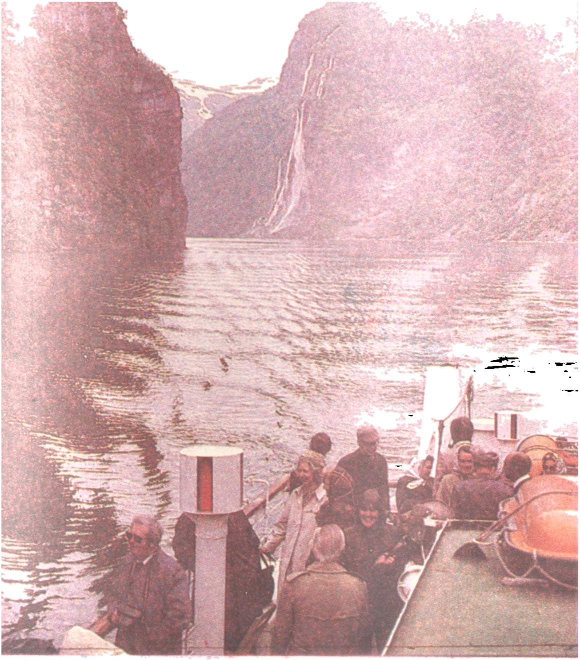

चित्र 22 — उत्तर की ओर एक स्टीमर

"यहाँ के भेड़ पालने वाले महीनों के लिए भेड़ें यों ही इन वीरानों में छोड़ देते हैं। ये घूमती रहती हैं, जंगलों में।" मेरे साथ बैठे छात्र बतलाते हैं।

रात्रि के नौ बजनेवाले हैं। रेल के माइक की आवाज आती है — त्रोंदिहाइम!

यहाँ पर रेलगाड़ी बदलनी है।

यह एक अच्छा शहर है। अच्छा बंदरगाह है। इसकी अपनी विशेषता है। नार्वे की संस्कृति में त्रोंदिहाइम का अपना अलग महत्व है।

सारे नार्वे में कुल चार विश्वविद्यालय हैं — ओस्लो, बर्गन, त्रोम्सो तथा त्रोंदिहाइम। त्रोंदिहाइम का विश्वविद्यालय कम उल्लेखनीय नहीं माना जाता।

नार्वे में सबसे पहला विश्वविद्यालय सन् 1811 में बना था।

दूसरी रेलगाड़ी ठीक ग्यारह बजे रात को रवाना होती है, बूदो के लिए। हम आराम से बैठे हैं। ट्रेन चल रही है। ज्यों-ज्यों जाड़ा बढ़ता चला जाता है, अँधियारा गहराता जाता है। अब जाड़े का पलड़ा भारी हो रहा है।

इस रेल में प्राय: सभी यात्री नार्वेजियन हैं।

भारतीय केवल तीन।

मेरे अलावा दो छात्र हैं,जो उत्तरी नार्वे में पढ़ रहे हैं। बातें करने के लिए कोई हो तो यात्रा आसान बन जाती है।

"यह रेल बूदो में समाप्त हो जाएगी। फाउस्के स्टेशन के बाद पश्चिम दिशा में मुड़ेगी परन्तु हमें सीधे उत्तर जाना है। इसलिए फाउस्के से बस से यात्रा करेंगे। यहाँ से उत्तर की ओर कोई रेलमार्ग नहीं है। लोग या तो बसों, कारों से यात्रा करते हैं अथवा स्टीमरों से।" वे बतलाते हैं।

"यहाँ जब सालभर बर्फ रहती है तो समुद्र जम नहीं जाता? स्टीमर या जहाज बारहों महीने कैसे चल पाते हैं?" पूछता हूँ।

वे हँस पड़ते हैं, "प्रकृति ने कुछ-न-कुछ व्यवस्था सबके लिए की है। नार्वे को जहाँ इतनी सर्दी दी है, वहाँ एक वरदान भी मिला है। नार्वे के तट के सागरों में "गल्फ-स्ट्रीम" गरम धारा बहती रहती है,जिससे किनारे का सागर का जल जमता नहीं। इसका लाभ यह होता

है कि यातायात के लिए समुद्र बारहों महीने खुला रहता है।''

बाहर अँधियारा है। धुँधला अँधियारा। उस सफेद अँधियारे में दूर किसी बस्ती या शहर की टिमटिमाती बत्तियाँ। शेष सारा संसार सोया है। मेरे डिब्बे में भी शांति है। सब झपकियाँ ले रहे हैं। मैं भी सोने की कोशिश करता हूँ, परन्तु नींद आ नहीं पाती।

बाहर अँधेरे की ओर देखता रहता हूँ, आँखें खोले।

पता नहीं हम कहाँ जा रहे हैं! किस स्वप्नलोक में! आँखे थक-सी गई हैं।

मैं सोने का प्रयास करता हूँ।

लगभग तीन बजे आँख खुलती है तो एक दूसरा ही नजारा दीखता है। पता नहीं यह कौन-सा लोक है।

तरह-तरह के प्रकाश क्षितिज में तैर रहे हैं। ठण्डी बयार। हवा को चीरती हुई आगे बढ़ती रेलगाड़ी। सारा संसार शांत है। सोया हुआ।

हल्की-हल्की किरणें। कुहासे से झाँकती। हवा में तैरती। बहती।

मैं स्तब्ध-सा देखता रह जाता हूँ।

उजियाले का रंग बदल-सा रहा है। धुंध के साथ प्रकाश भी हिलोरें ले रहा है।

ध्रुव-प्रदेश के निकट होने के कारण सब कुछ बदला-बदला-सा लग रहा है न।

घड़ी की सुई पाँच का अंक छू रही है। हम इस समय मोइजिन फीयोर्ड के पास से गुजर रहे हैं। पास ही कई बड़े-बड़े जहाज लंगर डाले आराम कर रहे हैं। समुद्र शान्त है। सोया हुआ शहर भी दीख रहा है — बिखरा-बिखरा। दूर-दूर तक फैला।

हम फीयोर्ड के साथ-साथ उत्तर की ओर बढ़ रहे हैं। बर्फीले पहाड़ हैं। पहाड़ों की एक कतार। लंबी कतार।

ठीक सवा पाँच बजे आसमान में एक लाल गोला झाँकने लगता है। सागर भी रक्त रंग का हो आया है। हिम से ढके पहाड़ भी करीब-करीब उसी रंग के हैं। सूर्य की पहली किरण ने जैसे सारा वातावरण ही बदल दिया है।

अब पहाड़ों को पार कर रही है ट्रेन।

एक टनल के बाद दूसरी टनल। टनलों के बीच रेलगाड़ी का यह लुका-छिपी का खेल

बहुत रोमांचकारी लग रहा है।

यहाँ चारों ओर धरती पर फर्न की हरी चादरें-सी बिछी हुई हैं।

एक फीयोर्ड फिर सामने तस्वीर की तरह आ खड़ा होता है।

मेरे अनेक सहयात्री जाग गए हैं। बाहर बिखरे सौंदर्य को पीने का प्रयास कर रहे हैं।

"यह कौन-सा फीयोर्ड है?" पूछता हूँ।

"मोइराना फीयोर्ड।"

दाईं ओर शहर है।

अरे, रेलगाड़ी फिर पहाड़ पर चढ़ रही है! ऊपर! और ऊपर! क्या हो गया है इसे!

समतल पठार-जैसा लग रहा है यह। पुरानी बर्फ अब तक जमी हुई है।

उत्तर का यह सबसे बड़ा पहाड़ है।

पहाड़ के ऊपर है हमारी रेलगाड़ी।

अभी हम चारों ओर के दृश्य देख ही रहे होते हैं कि रेलगाड़ी से घोषणा होती है—

"यात्रियों से निवेदन है कि हम इस समय "पोलर-सर्किल" से गुजर रहे हैं। रेल की पटरियों के दोनों ओर ये निशान आप देख रहे हैं — यहीं से आरंभ हो रहा है ध्रुव क्षेत्र!

इस घोषणा के साथ विदेशी यात्रियों को रोमांच-सा हो आता है। अब हम ध्रुव-प्रदेश के भीतर यात्रा कर रहे हैं, इसकी कल्पना ही कितनी आह्लादकारी है!

रेंडियरों को रोकने के लिए यहाँ भी लम्बी-लम्बी बाड़ें लगी हैं। उजाड़ प्रदेश है। कहीं-कहीं पिघली हुई बर्फ पानी बनकर इकट्ठा हो गई है।

"यहाँ मध्य रात्रि का सूर्य कब दीखता है?" मैं पूछता हूँ। "इस क्षेत्र में, जहाँ इस समय हम लोग हैं — 7 जून से 8 जुलाई तक आधी रात को आसमान में जगमगाता सूर्य दीखता है। आप कुछ समय पहले यहाँ पहुँच जाते तो आसानी से देख पाते।" उत्तर मिलता है।

"और ठीक नार्थ केप में?" मैं फिर प्रश्न पूछता हूँ।

"14 मई से 29 जुलाई तक।"

"जहाँ इस समय हम लोग हैं, वहाँ सबसे अँधेरी रातें कब होती हैं?"

"15 दिसम्बर से 29 दिसम्बर तक — एकदम घनी, काली रातें होती हैं। वर्ष में सबसे गहरी...।"

रात की बातें सोचते-सोचते देखता हूँ — धूप पूरी निकल आई है। चमक नहीं रही, जगमगा रही है। झिलमिलाती हुई। आँखें चुँधिया रही हैं।

फाउस्के पहुँचते-पहुँचते आठ बज जाते हैं।

यहाँ से रेलगाड़ी बूदो की तरफ मुड़ जाएगी।

हम सामान उतार कर सामने खड़ी बस में रख देते हैं।

अगली यात्रा

यहाँ कुछ दुकानें हैं। अत: रास्ते का चबेना खरीद लेते हैं। चलती बस में खाते चले जाएँगे।

रेल चली गई है। चली जाए हमें क्या?

हमारा सफर तो और है। लो, वह भी शुरू हो रहा है। थोड़ी ही दूरी तय करते हैं कि सागर के किनारे बस रुक जाती है। एक फेरी खड़ी है। उसमें हम तो सवार होते ही हैं, हमें देखकर हमारी बस भी सवार हो जाती है। सागर में लगभग एक घंटे का सफर फेरी से ही तय करना है।

उस पार पहुँच कर फिर फेरी में से बस उतार लेंगे और उस में बैठकर अगला सफर तय करेंगे।

लोदिंगन पहुँचते-पहुँचते दिन के दो बज जाते हैं।

जिस तरह ट्रेन कई टनलों को पार करती हुई आगे बढ़ती थी, उसी तरह बस भी भाग रही है। पता नहीं कितनी सुरंगें अब तक पार कर ली हैं।

"हमें यहाँ से कहाँ जाना है? कितनी दूर?" पूछता हूँ।

चित्र 23 – हवनशायर के छात्र

"उत्तर की दिशा में और उत्तर की ओर। हास्टा से पहले ईवन शायर आता है। वहाँ है हमारी मंजिल। फिलहाल।" उत्तर मिलता है।

छोटा-सा सागर तट का शहर है लोदिगन। साफ-सुथरा। हर शहर की तरह। नावें किनारे लगी हैं।

धूप बहुत तेज है। इस ठण्डे इलाके में इतनी धूप देखने का सौभाग्य यहाँ के लोगों को कम ही मिल पाता होगा।

धूप के माने ही यहाँ स्वर्ग के होते हैं। एक स्वर्गीय उपलब्धि के।

हमारी बस सागर के किनारे-किनारे चल रही है।

उत्तरी नार्वे में आने के बाद, पहली बार इत्ते ढेर सारे पक्षी एक साथ दीख रहे हैं। हवा में तैरते। चहचहाते। फड़फड़ाते।

दूर कहीं नीले-नीले पहाड़ हैं। स्लेटी रंग के। बैंजनी, नुकीले, नंगे। एक साथ कितने ही रंगों की परतें हैं।

ईवन शायर में विद्यालय है, जहाँ कुछ भारतीय छात्र भी पढ़ते हैं। अफ्रीकी देशों के भी छात्र हैं। सागर तट पर बसा गाँवनुमा एक कस्बा दूर से चमक रहा है।

यहाँ के गाँव तथा कस्बे हमारे यहाँ के जैसे गाँव या कस्बे नहीं होते।

पूरा सुविधाएँ सबको उपलब्ध हैं। डाकखाना। स्कूल। अस्पताल। रेडियो स्टेशन।होटल। दुकानें। सब कुछ जो आवश्यक होते हैं।

स्कूल के परिसर में घोड़े भी हैं।

झबरैले कुत्ते भी जो जाड़ों में बर्फ गिरनें पर स्लेज गाड़ियाँ खींचा करते हैं।

दिन-रात भूँकते रहते हैं।

विद्यालय के प्रधानाचार्य मिस्टर रैदार अपने घर पर आमंत्रित करते हैं। रेंडियर का मांस विशेष रूप से बनाया गया है हमारे लिए। परन्तु उन्हें यह जानकर निराशा होती है कि मैं इधर कुछ दिनों से मांस नहीं खा रहा हूं।

नार्वे के बारे में वे बतलाते हैं।

"हमारे देश में दो भाषाएँ प्रचलित हैं, "वे कहते हैं" बुक मोल और नायनोर्क्स ! बुक

मोल शहरों की भाषा है। इसमें डेनिश भाषा का अधिक प्रभाव है। कम लोग जानते हैं कि नार्वे में चार सौ साल से भी अधिक समय तक डेनिश लोगों का शासन रहा था। दक्षिणी नार्वे में यह भाषा अधिक प्रचलित है। इससे बहुत मिलती-जुलती है — नायनोर्क्स। यह ग्रामीण इलाकों में अधिक बोली जाती है। उत्तरी नार्वे की भाषा भी कह सकते हैं इसे।"

"लैप लोगों की भाषा इनसे कितनी अलग है?" पूछता हूं।

"लैप लोगों की भाषा का नाम "सामे" है। इसमें फिनिश-फिनलैंड की भाषा का प्रभाव ज्यादा है।"

"इस स्कूल का संचालन कौन करता है?"

"ईसाई मिशनरियाँ चलाती हैं इसे।" रैदार कहते हैं, "यों थोड़ी बहुत सहायता सरकार भी करती है।"

"नार्वे के निवासी मूलत: किस धर्म को मानते हैं?"

"क्रिश्चिनियटी यानी ईसाई धर्म को।"

"ईसाई धर्म कब आया यहाँ?" मेरा प्रश्न है।

"सन एक हजार के लगभग।"

नार्वे के इतिहास की ओर बातें मुड़ने लगती हैं तो वे जानकारी देते हैं—

"सन् 800-900 के आसपास "वाइकिंग" शुरू हुआ। नार्वे के कुछ लोग लूट-पाट का काम करने यूरोप के देशों में चले जाते थे। इसी को "वाइकिंग" कहते हैं। सन् 875 में ऐसे हजारों लोग इंग्लैंड में बस गए। कई वाइकिंग बस्तियाँ बन गईं। कुछ अन्य देशों में भी नार्वेजियन लोग आबाद हुए। यह बाहर बसने का सिलसिला सदियों तक चला तो चलता चला गया।" रैदार इतिहास पर नजर डालते हुए कहते हैं, "सन् 1866 से,73 तक बहुत बड़ी संख्या में लोग देश छोड़कर निकल भागने में सफल रहे। एक लाख लोग ऐसे थे, जो पंख लगाकर उड़ चले। इनमें अधिकांश अमेरिका के निवासी बन गए।"

"आधुनिक युग तक आते-आते भी क्या यही क्रम चलता रहा?" जिज्ञासा से प्रश्न करता हूं।

"जी हाँ, यह सिलसिला चलता रहा। सन् 1900 से 1910 तक दो लाख नार्वेजियन बाहर बस गए। इस तरह विदेशों में बसे प्रवासी नार्वेजियनों की संख्या लगभग 9 लाख तक हो गई थी...।"

"नार्वे पर डैनिशों का ही शासन रहा था... ?"

"नहीं, नहीं। स्वीडन का भी राज रहा। सन् 1905 में नार्वे स्वीडन की गुलामी से मुक्त हुआ। सन 1925 में सौलवर्ड द्वीप नार्वे को लौटाया गया...।"

रैदार बहुत सहृदय हैं। सज्जन हैं। विद्यार्थियों के साथ इनका व्यवहार बड़ा आत्मीयता का रहता है। वे बतलाते हैं कि भारत-दर्शन की उनकी बड़ी इच्छा है। शायद अगले वर्ष वे आ पाने में सफल होंगे...।

शाम को वे खेल के मैदान में भी ले जाना नहीं भूलते।

फुटबाल नार्वे का प्रमुख खेल है।

स्कीइंग की जन्मभूमि ही मानी जाती है नार्वे। गर्मियों में फुटबाल। जाड़ों में स्कीइंग यानी बर्फ के खेल।

इनके अलावा तैरना, ट्रेकिंग करना, नौका-दौड़ तथा टेनिस भी यहाँ द्रुत प्रचलित हैं।

"सुना है, आप लैपलैंड की तरफ जाने का कार्यक्रम बना रहे हैं?" वे पूछते हैं।

"हाँ, सोच तो रहा हूँ...।" मेरे यह कहने पर वे लैपलैंड के बारे में विस्तार से बतलाना नहीं भूलते।

□ □ □

17

जहाँ स्लेज गाड़ियाँ चलती हैं

यहाँ आसपास के कुछ क्षेत्र देखने के बाद में सचमुच ही पाँचवें दिन ट्राम्सों की तरफ यानी लैपलैंड जाने का कार्यक्रम बनाता हूँ।

गरम कपड़े तो दिन-रात पहनते ही हैं यहाँ, पर लैपलैंड की सर्दी के लिए और भी भारी गरम कपड़ों की व्यवस्था कर लेते हैं। खाने-पीने का सामान सब जगह मिल जाता है, परन्तु कुछ अपने साथ भी रखना नहीं भूलते। जब भूख लगी, झोले से सामान निकाला और खा लिया। गरम-गरम चाय या काफी तो सब जगह मिल ही जाती है।

सुबह आठ बज रहे हैं।

बस से मैं हास्टा के लिए रवाना होता हूँ।

हास्टा एक द्वीप है जो बड़े-बड़े पुलों के द्वारा देश के मुख्य भाग से जुड़ा है। बहुत बड़ा शहर है। व्यावसायिक केन्द्र है। इसके आसपास समुद्र से पेट्रोलियम बहुत बडी मात्रा में निकाला जाता है। मछली-उद्यम का भी उत्तरी नार्वे का विशाल केन्द्र है। दो दैनिक समाचार-पत्र प्रकाशित होते हैं यहाँ। बंदरगाह भी यहाँ का बड़ा अच्छा माना जाता है।

बर्गन से प्राय: प्रतिदिन एक जहाज नार्वे के समुद्री किनारो को छूता हुआ उत्तर में

चित्र 24 — ट्राम्सो का गिरजा घर

फिनमार्क तक जाता है। इसमें प्राय: सैलानी होते हैं -- विदेशों से आए। इसी से मुझे ट्राम्सो तक पहुँचना है।

हास्टा से मुझे ट्राम्सो तक पहुँचना है।

हास्टा से यह जहाज लगभग 12 बजे रवाना होता है। मैंने पहले से ही अपने जाने तथ आने की सीटें बुक करा ली हैं।

सूल्तन से हास्टा की दूरी लगभग 45 किलोमीटर है।

हास्टा पहुँचने पर पता चलता है कि बर्गनवाला जहाज पहुँच चुका है। ठीक समय प यहाँ से आगे के लिए रवाना होगा।

जहाज में सैकड़ों लोग हैं, परन्तु मुझे एक भी चेहरा भारतीय या एशियाई नहीं लगता अधिकांश लोग इंग्लैंड के लग रहे हैं। इनमें वृद्धों की संख्या सब से अधिक है। लगता है, यं

ही घूमने के लिए निकल आए हैं। घर में खाली बैठे-बैठे भी क्या करते!

द्वीप ही द्वीप

जहाज रवाना होता है तो अच्छा लगता है। चलो, अब पहुँच ही जाएँगे — लैपलैंड यानी ट्राम्सो।

ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते हैं, ठंड बढ़ती चली जा रही है। जहाज वातानुकूलित है,परन्तु बाहर निकलते ही लगता है, बर्फ की ठण्डी शिलाओं से टकरा रहे हैं। हवा ऐसी धारदार कि छीलती हुई निकल जाती है।

चारों ओर बर्फ से ढके पहाड़ हैं। एकदम नंगे। एक भी तिनका कहीं नहीं दीख रहा है। पेहाड़ के ऊपर से दरारें-सी पड़ी हैं — बर्फ के कारण। एक बड़ा-सा सफेद सीगल पक्षी बार-बार उड़कर पास आ जाता है। जहाज के साथ-साथ उड़ रहा है।

मैं बाहर डेक पर खड़ा हूँ।

जिस दिशा में जहाज बढ़ रहा है, वहाँ पहाड़ बहुत अधिक बर्फ से ढके हैं। ऊपर से नीचे तक सफेद चोंगा-सा पहने।

द्वीप-ही-द्वीप !

फीयोर्ड-ही-फीयोर्ड !

बर्फ-ही-बर्फ !

नार्वे में 50 हजार द्वीप हैं। 500 झीलें। जल के बीच में विशाल पर्वत श्रृंखलाएँ तैरती-सी नजर आ रही हैं।

पहाड़ के ढलानों पर जहाँ हिम नहीं है, वनों की चादर-सी बिछी लगती है। पतझड़ आ रहा है। अत: पेड़ों की पत्तियाँ पीली पड़नी आरंभ हो गई हैं। कहीं-कहीं पीलापन, थोड़ा-सा ललाई लिए है। एक समय अब ऐसा भी आएगा, सारे के सारे पीले पहाड़ पीली घाटियाँ एकदम लाल नजर आएँगी।

फीयोर्ड के किनारे-किनारे कहीं इक्की-दुक्की छिटकी हुई बस्तियाँ हैं। अधिकांश घर लाल छतोंवाले हैं।

जिन ढलानों पर सूरज की किरणें सीधी नहीं पड़तीं, वहाँ बर्फ अधिक है। डायरी में लिखते-लिखते हाथ जम रहे हैं।

जहाज के ऊपर। ऊँचे सफेद खंभे पर एक जलपाँखी (सीगल) दूर तक उड़ान भरने के बाद थककर फिर बैठ जाता है।

किंयों... किंयों... किंयों... ?

काँव... काँव... किंयों... ?

मैं गौर से देख रहा हूं — सीगल का ऊपर का रंग कुछ-कुछ स्लेटी है। नीचे एकदम सफेद। चोंच हल्के पीले रंग की। एक यात्री अभी बतला रहे थे कि उत्तरी नार्वे के सागरीय तट पर समुद्र में रहने वाले बहुत से पक्षी भी आते हैं। प्रति वर्ष एक विशेष मौसम में आकर सैलानियों के आकर्षण का केन्द्र बनते हैं। अधिकतर पक्षी प्रवासी होते हैं। वर्ष के अधिकांश समय में दक्षिणी ध्रुव में रहते हैं।

दक्षिणी ध्रुव से उत्तरी ध्रुव तक उड़कर ये छोटे-छोटे पक्षी भला किस तरह आते होंगे ?

मैं सोचता रहता हूँ। मैंने कहीं पढ़ा था कि कुछ मछलियों में भी घूमने-फिरने की जन्मजात आदत होती है। पक्षियों की तरह वे भी दूर-दूर तक की सैर कर आती हैं — जैसे मेक्रेयल मछली।

धुनी हुई रुई की तरह जहाज का फेन पीछे छूट रहा है।

धूप नाम मात्र की है। मात्र पीला-पीला प्रकाश। तापहीन। जल एकदम स्याह काला।

फिनसंसेस में अभी एक पुल आया था। विशाल पुल ! जो एक द्वीप को दूसरे द्वीप से जोड़ देता है। कोई बतला रहा था कि यह यूरोप का सबसे बड़ा पुल है।

□ □ □

18

लैप लोगों का देश

उत्तरी नार्वे की राजधानी ट्राम्सो पहुँचते-पहुँचते शाम के चार बज जाते हैं। ट्राम्सो विश्वविद्यालय दुनिया का एकमात्र विश्वविद्यालय है, जो इतने धुर उत्तर में है। नार्वे का मछली पकड़ने का भी यह सबसे बड़ा केन्द्र है।

2 हजार 5 सौ वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला दुनिया का सबसे बड़ा शहर है — क्षेत्रफल की दृष्टि से। टूरिस्ट गाइड की यह बात मुझे सही लग नहीं पा रही है।

ट्राम्सो शहर देखने के बाद उन क्षेत्रों को भी देखने निकल पड़ते हैं, जहाँ यहाँ के आदिवासी लैप रहा करते हैं।

बर्फीले इलाकों में अब वे तम्बुओं या बर्फ के घरों में नहीं रहते। हम.देखते हैं, उनके लिए भी वैसे ही आरामदेह घर सरकार ने बना दिए हैं। मकानों की पट्टी-सी है।

काले-काले सफेद-सफेद रीछ जैसे झबरैले कुत्ते। रेंडियरों के बाड़े, जिनमें सैकड़ों नहीं, हजारों की संख्या में रेंडियर पाले जा रहे हैं। कुत्तों के द्वारा खींची जानेवाली स्लेज गाड़ियाँ हैं।

सरकार ने उनके लिए सारी सुख-सुविधाओं की व्यवस्था कर दी है। वे लोग भी

चित्र 25 एक लैप

आधुनिकता की दौड़ में अब पीछे नजर नहीं आ रहे हैं।

यह देखकर सहज ही आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता कि वे अपनी पुरानी परंपराएँ अब तक निभा रहे हैं। उनके कपड़े बड़े ही रंग-बिरंगे हैं। चमकीले ! वैसे ही पुराने ढंग के जैसे सदियों पहले हुआ करते होंगे।

बच्चे, बूढ़े, औरतें, मरद — सब अपने उसी परिधान में हैं।

अब लैप बच्चे स्कूल जाते हैं।

उनके घरों में भी टेलीविजन दिखलाई दे रहे हैं। फुटबाल खेलने में लैप तरुण किसी से कम नहीं।

ये बड़े मिलनसार लगते हैं। बड़े स्नेहशील।

जैसे ही हम पास पहुँचते हैं, कुत्ते झपटने के लिए आतुर हो उठते हैं।

वह विचित्र अनुभव

इतनी सर्दी इस संपूर्ण यात्रा में कभी भी अनुभव नहीं हुई। शरीर जैसे जम रहा है। होंठ नीले-नीले। स्याह काले।

इतने गरम कपड़े पहनने के बाद भी सारा शरीर पानी की तरह ठण्डा हो रहा है।

अधिक देर तक रह पाना असंभव लग रहा है। इसलिए ट्राम्सो की ओर निकल पड़ते हैं।

रात को ठीक बारह बजे फिनमार्क से जहाज बर्गन की ओर जाएगा।

ट्राम्सो से हमें सवार होना है।

इस भयंकर सर्दी में। इत्ती रात में। बंदरगाह में एक शैड भी नहीं है, सिर छिपाने के लिए।

सागर तट पर सीगल पक्षियों की जलक्रीड़ा देखते हुए समय बिता रहा हूँ। तभी मेरे सामने एक दाढ़ी वाला तरुण आता है। एक दो बार देखकर चला जाता है। कुछ क्षण बाद फिर आता है।

"आप एशियन हैं ?" वह अंग्रेजी में पूछता है।

"हाँ, भारतीय हूँ...?" मैं ठिठुरता हुआ कहता हूँ, "और आप ?"

"मैं भी भारतीय हूँ।"

दोनों सहसा आश्चर्यचकित रह जाते हैं।

"भारत कहाँ ?"

"दिल्ली — ।"

"दिल्ली कहाँ ?"

"लाजपत नगर— ।"

"अरे, मैं सफदरजंग एन्क्लेव में रहता हूँ, पास ही।"

दोनों खिलखिला पड़ते हैं।

बैठकर एक रेस्तराँ में चाय पीते हैं।

यह तरुण कुछ वर्ष पूर्व दिल्ली में फीजियोथेरेपी का कोर्स पूरा करके नार्वे चला गया था। उत्तरी नार्वे के किसी गाँव में अब बस गया है। यहीं की नागरिकता ले ली है। पत्नी नार्वेजियन है। ट्राम्सो में फीजियोथेरेपिस्टों की एक सेमीनार चल रही है। उसी में भाग लेने आया है। बतलाता है कि यहाँ से प्रतिदिन रात को अपने बच्चों को फोन करता है। चौराहे के पास बूथ से। इसलिए यहाँ घूमता-घामता आ पहुँचा।

पता नहीं कितनी देर तक हम बातें करते रहते हैं। अंत में रेस्तराँ का बैरा आता है। कहता है, रेस्तराँ कब का बंद हो चुका है। मैं दरवाजा बंद करने के लिए बैठा हूँ।

रात के बारह बजे वाला जहाज डेढ़ बजे आता है। मैं जहाज के वातानुकूलित कमरे में बैठा अपने प्राणों की रक्षा का प्रयत्न करता हूँ। सोच रहा हूँ, लाजपत नगर का यह प्रवीण कुमार घोर सर्दियों के दिन जब तापमान शून्य के बिन्दु से भी 30-40 डिग्री नीचे चला जाता होगा किस तरह रहता होगा ?

ईवन शायर में कुछ दिन रहने के बाद लौटने का कार्यक्रम बनाता हूँ। सोचता हूँ, क्यों न यहाँ से नार्विक होता हुआ उत्तरी स्वीडन चला जाऊँ ! वहाँ से दक्षिण में स्वीडन की राजधानी

स्टाकहोम और फिर वहाँ से ओस्लो।

पूरी एक परिक्रमा !

ईवन शायर से 4-5 घंटे की यात्रा पूरी करके नार्विक बंदरगाह पहुँचता हूँ। यह वही ऐतिहासिक नार्विक बंदरगाह है,जिस पर दूसरे विश्वयुद्ध के समय हिटलर ने नार्वे जीतने के लिए सब से पहले हमला किया था।

यहाँ से ट्रेन रवाना होती है, केवल स्वीडन की सरहद तक। कैरूना से ट्रेन बदलकर सीधे स्टाकहोम पहुँचा जा सकता है। टिकट पहले ही सारी यात्रा का एक साथ मिल जाता है।

नार्विक से चले तो शाम थी।

ठण्डी बर्फीली हवा। बारिश। धुँध।

कैरूना से ज्यों ही स्वीडिश रेल में बैठते हैं, खिड़की से बाहर देखता हूँ — धुनी हुई रुई के छोटे-छोटे उड़ते टुकड़ों की तरह बाहर फर-फर बर्फ गिर रही है। सारे मकानों की छतें सफेद हैं। पेड़ सफेद हैं। पौधे सफेद हैं। एक लम्बी-चौड़ी सफेद बर्फ की चादर सारी धरती पर बिछी है।

बिजली की रेलगाड़ी विद्युत गति से आगे बढ़ रही है। अभी लगभग डेढ़ हजार किलोमीटर की यात्रा तय करनी है।

बर्फ के फाए चारों तरफ उड़-उड़कर बिखर रहे हैं।

मैं इस तरह आसमान से गिरती बर्फ का यह नजारा न जाने कितने सालों बाद आज फिर देख रहा हूँ !

□ □ □

जवाहरलाल नेहरू जन्मशती
JAWAHARLAL NEHRU CENTENARY
1889 1989

विद्ययाऽमृतमश्नुते
एन सी ई आर टी
NCERT

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING